द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग

भगवान् शिव अपने भक्तों और प्राणिमात्र की कल्याण की कामना से उनपर अनुग्रह करते हुए स्थल-स्थल पर अपने विभिन्न स्वरूपों में स्थित हैं। जहाँ-जहाँ जब-जब भक्तों ने भक्तिपूर्वक शम्भु का स्मरण किया, तहाँ-तहाँ तब-तब वे अवतार लेकर भक्तों का कार्य सम्पन्न करके स्थित हो गये।

शिवपुराण में आया है कि भूतभावन भगवान् शङ्कर प्राणियों के कल्याणार्थ तीर्थ-तीर्थ में लिङ्गरूप से वास करते हैं। जिस-जिस पुण्य-स्थान में भक्तजनों ने उनकी अर्चना की, उसी-उसी स्थान में वे आविर्भूत हुए और लिङ्ग अथवा ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में सदा के लिये अवस्थित हो गये। यों तो शिवलिङ्ग असंख्य हैं, पर उनमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग सर्वप्रधान हैं। शिवपुराण के अनुसार ये निम्नलिखित हैं-

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारे परमेश्वरम् ।।
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।।
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने ।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये ।।
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत्।।
यं यं काममपेक्ष्यैव पठिष्यन्ति नरोत्तमाः ।
प्राप्स्यंति कामं तंतं हि परत्रेव मुनीश्वराः।। (शिपु. कोटिरु. सं. 1/21-25)

अर्थात् (1) सौराष्ट्र-प्रदेश (काठियावाड़) में श्रीसोमनाथ, (2) श्रीशैल पर श्रीमल्लिकार्जुन, (3) उज्जयिनी (उज्जैन) में श्रीमहाकाल, (4) (नर्मदा के बीच) श्रीओंकारेश्वर अथवा अमरेश्वर, (5) हिमाच्छादित केदारखण्ड में श्रीकेदारनाथ, (6) डाकिनी नामक स्थान में श्रीभीमशङ्कर, (7) वाराणसी (काशी) में श्रीविश्वनाथ, (8) गौतमी (गोदावरी) तट पर श्रीत्र्यम्बकेश्वर, (9) चिताभूमि में श्रीवैद्यनाथ, (10) दारुकावन में श्रीनागेश्वर, (11) सेतुबन्ध पर श्रीरामेश्वर और (12) शिवालय में श्रीघुश्मेश्वर-ये द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग हैं, जिनका बड़ा माहात्म्य है। जो कोई नित्य प्रातःकाल उठकर इन नामों का पाठ करता है, वह सब पापों से मुक्त हो सम्पूर्ण सिद्धियों का फल प्राप्त कर लेता है। जिस-जिस कामना को लेकर उत्तम जन इसका पाठ करेंगे, उनकी वह कामना फलीभूत हो जायगी-इसमें कोई संशय नहीं।

अकेले शिवपुराण में ही नहीं, रामायण, महाभारत तथा अन्य प्राचीन धर्मग्रन्थों में भी ज्योतिर्लिङ्ग-सम्बन्धी वर्णन भरे पड़े हैं। स्कन्दपुराणान्तर्गत काशीखण्ड, सेतुबन्धखण्ड, रेवाखण्ड,

अवन्तीखण्ड और केदारखण्ड में काशी, रामेश्वर, महाकाल एवं केदारनाथ तीर्थ का विस्तृत वर्णन है। अस्तु, अब इस विषय का अधिक विस्तार न करके इन द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों का संक्षिप्त परिचय देने की चेष्टा की जा रही है ।

(1) श्रीसोमनाथ

शिवपुराण में प्रभासक्षेत्र एवं सोमनाथ के माहात्म्य के संदर्भ में कहा गया है कि–

प्रभासं च परिक्रम्य पृथिवीक्रमसंभवम्।
फलं प्राप्नोति शुद्धात्मा मृतः स्वर्गे महीयते।।
सोमलिङ्गं नरो दृष्ट्वा सर्वपापात्प्रमुच्यते।
लब्ध्वा फलं मनोभीष्टं मृतस्स्वर्गं समीहते।।
यद्यत्फलं समुद्दिश्य कुरुते तीर्थमुत्तमम्।
तत्तत्फलमवाप्नोति सर्वथा नात्र संशयः।। (शिवपु. कोटिरु. सं. 14/56–58)

अर्थात् प्रभास की परिक्रमा करके मनुष्य पृथ्वी की परिक्रमा का फल पाता है और वह शुद्धात्मा पुरुष मरने पर स्वर्ग जाता है। सोमनाथ के लिंग के दर्शनमात्र से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है और अभीष्ट फल प्राप्तकर मरने पर स्वर्ग को प्राप्त होता है। मनुष्य जिन–जिन कामनाओं को लक्ष्य में रखकर इस तीर्थ का सेवन करता है, वह उन–उन फलों को प्राप्त कर लेता है– इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

श्रीसोमनाथ महाराज गुजरात के काठियावाड़–प्रदेशान्तर्गत श्रीप्रभासक्षेत्र में विराजमान हैं, जहाँ लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने यदुवंश का संहार तथा जरा नामक व्याध के बाण से अपना पाद–पद्म–वेधन कराकर अपनी नरलीला संवरण की थी। यह स्थान लकुलीश–पाशुपत मत के शैवों का केन्द्र–स्थल रहा है। इस प्रकार यह शैव एवं वैष्णव दोनों का ही महातीर्थ है। इस स्थान को वेरावल, सोमनाथपाटण, प्रभास या प्रभासपाटण कहते हैं। सौराष्ट्र के दक्षिण में वेरावल से पाँच किलोमीटर पर पाटण के समुद्रकिनारे पर सोमनाथजी का मन्दिर स्थित है। सोमनाथपाटण गाँव में छोटे दरवाजे के दक्षिण में समुद्र के तटवर्ती प्रदेश का नाम अग्निकुण्ड रखा गया है। यहाँ हिरण्या, सरस्वती और कपिला नदी का त्रिवेणी संगम होता है। सभी यात्री सर्वप्रथम यहाँ स्नान करते हैं। हिरण्या नदी के किनारे ही भगवान् श्रीकृष्ण के देह का अग्निसंस्कार हुआ था। यहाँ पर ब्रह्मेश्वर महादेव, हिंगलाज माता का मन्दिर, सूर्यनारायण का मन्दिर, सिद्धनाथ महादेवजी का मन्दिर, भीमेश्वर महादेव, रामचन्द्र, नरसिंह आदि के अनेक मन्दिर दर्शनीय हैं। इस पुण्य प्रभासक्षेत्रसहित श्रीसोमनाथ का पौराणिक परिचय संक्षेप में यह है कि दक्षप्रजापति ने अपनी सत्ताईसों कन्याओं का विवाह चन्द्रदेव के साथ किया था; परंतु चन्द्रमा का अनुराग उनमें से एकमात्र रोहिणी के प्रति था। इस कारण अन्य छब्बीस दक्षकन्याओं को बड़ा कष्ट रहता था। उनके शिकायत करने पर दक्षराज ने चन्द्रमा को बहुत समझाया–बुझाया, पर उनपर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा।

अन्त में दक्ष ने उन्हें यह शाप दिया–'जा, तू क्षयी हो जा।' फलतः चन्द्रमा क्षयग्रस्त हो गये। सुधाकर का सुधावर्षण–कार्य रुक गया। चराचर में त्राहि–त्राहि की पुकार होने लगी। चन्द्रमा के प्रार्थनानुसार इन्द्र आदि देवता तथा वसिष्ठ आदि ऋषि–मुनि कोई उपाय न देख पितामह ब्रह्मा की सेवा में उपस्थित हुए। ब्रह्मदेव ने यह आदेश दिया कि चन्द्रमा देवादि के साथ प्रभासतीर्थ में मृत्युञ्जय भगवान् की आराधना करे, उनके प्रसन्न होने से अवश्य ही रोगमुक्ति हो सकती है। पितामह की आज्ञा को सिर–माथे रख, चन्द्रमा ने देवमण्डलीसहित प्रभास में पहुँच मृत्युञ्जय भगवान् की अर्चना का अनुष्ठान आरम्भ कर दिया। ब्रह्माजी ने भूमि खोदकर प्रभास–क्षेत्र में कुक्कुटाण्ड के बराबर स्वयम्भू स्पर्श–लिंग सोमनाथ के दर्शन किये। उस लिंग को दर्भ और मधु से आच्छादित करके ब्रह्मा ने उस पर ब्रह्मशिला रख दी और उसके ऊपर सोमनाथ के बृहल्लिङ्ग की प्रतिष्ठा की। चन्द्रमा उसी बृहल्लिङ्ग का अर्चन करने लगे। मृत्युञ्जय–मन्त्र से पूजा और जप होने लगा। छः मासतक निरन्तर घोर तप किया, दस करोड़ मन्त्र–जप कर डाला; फलतः आशुतोष संतुष्ट हुए। प्रकट होकर वरदान दे मृत्युञ्जय भगवान् ने मृत–तुल्य चन्द्रमा को अमरत्व प्रदान किया। कहा कि 'सोच मत करो। कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन तुम्हारी एक–एक कला क्षीण होगी; पर साथ ही शुक्ल पक्ष में उसी क्रम से तुम्हारी एक–एक कला बढ़ जाया करेगी और इस प्रकार प्रत्येक पूर्णिमा को तुम पूर्णचन्द्र हो जाया करोगे।' इस प्रकार कलाहीन कलाधर पुनः कलायुक्त हो गये और सारे संसार में सुधाकर की सुधाकिरणों से प्राणसंचार होने लग। पीछे चन्द्रादि की प्रार्थना स्वीकार कर भवानीसहित भगवान् शङ्कर, भक्तों के उद्धारार्थ, ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में सदा के लिये इस क्षेत्र में वास करने लगे। महाभारत, श्रीमद्भागवत और स्कन्दपुराण आदि पुण्य ग्रन्थों में इस प्रभासक्षेत्र की बड़ी महिमा गायी गयी है। कहा है कि पावन प्रभास में प्रवाहित पूतसलिला सरस्वती के संगम के दर्शन एवं सागर–संगीत अर्थात् समुद्र की हिल्लोलध्वनि के श्रवणमात्र से पापपुञ्ज उसी प्रकार पलायन कर जाते हैं, जिस प्रकार वनराज सिंह को देखते ही मृग–समुदाय।

कहा जाता है कि प्राचीन सोमनाथ–मन्दिर का विशाल घंटा दो सौ मन सोने का बना था। मन्दिर के 56 खंभे हीरे, नीलम, माणिक आदि मूल्यवान् रत्नों से जटित थे। मन्दिर के गर्भगृह में रत्नदीपों की जगमगाहट रात–दिन रहती थी। कन्नौजी इत्र से नंदादीप हमेशा प्रज्वलित रहता था। भंडार गृह में अनगिनत द्रव्य सुरक्षित था। भगवान् सोमनाथ की पूजा–अभिषेक के लिये प्रतिदिन हरिद्वार, प्रयाग तथा काशी से लाया–गया गंगाजल प्रयोग होता था। पूजा के लिये कश्मीर से फूल आते थे। नित्य की पूजा के लिये एक हजार ब्राह्मण नियुक्त किये गये थे। मन्दिर के दरबार में चलनेवाले नृत्य एवं गायन के लिये लगभग 350 नृत्यांगनायें नियुक्त थीं। इस धार्मिक संस्थान को 10,000 गाँवों का उत्पादन इनाम के रूप में मिलता था। भक्तगणों द्वारा समर्पित करोड़ों रुपये की धन–दौलत से देवस्थान का भंडार सदा भरा रहता था। साथ ही अग्निपूजक विदेशी व्यापारी लोगों ने अपने मुनाफे में से कुछ रकम समर्पित कर देवता के भंडार में अनगिनत वृद्धि की थी।

श्रीसोमनाथ के इस वैभवसम्पन्न पवित्र स्थान पर विदेशी मुसलमानों के अनेक बार आक्रमण हुए। 722 ई० में सिन्ध का सूबेदार जुनामद ने प्रथम आक्रमण करके अनगिनत खजाना लूटा। चुम्बकीय चमत्कार के कौशल से बीच में (अधर में लटकी) दिखाई देनेवाली श्रीसोमनाथ की भव्य मूर्ति महमूद गजनवी ने शुक्रवार दिनांक 11 मई 1025 ई० में सुबह 9 – 46 को तोड़ डाली। इस दिन उसने 18 करोड़ का खजाना लूटा था। गजनी द्वारा नष्ट – भ्रष्ट किया मन्दिर आज समुद्र के तट पर भग्नावशेष के रूप में विद्यमान है। कहते हैं जब शिवलिंग नहीं टूटा, तब उसके बगल में भीषण अग्नि जलायी गयी। 1297 ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने सोमनाथ को अपने सेनापति अफजल खाँ द्वारा लूटवाया एवं तोड़वाया। 1395 ई० में गुजरात का सुल्तान मुजफ्फरशाह, 1413 ई० में सुल्तान अहमदशाह, 1479 ई० में महमूद बेगड़ा, 1503 ई० में दूसरे मुजफ्फरशाह और 1701 ई० में धर्मान्ध औरंगजेब ने मन्दिर को नष्ट – भ्रष्ट कर अनगिनत संपत्ति लूट ली।

जिस प्रकार मन्दिर टूटने का सिलसिला जारी रहा उसी प्रकार उसके पुनर्निर्माण का भी क्रम चलता रहा। महमूद गजनवी के बाद राजा भीमदेव ने पुन: प्रतिष्ठा कराकर मन्दिर को पवित्र किया। सिद्धराज जयसिंह (ई० स० 1093 से 1192) ने भी मन्दिर की पुन: प्रतिष्ठा में काफी योगदान दिया। 1168 ई० में विजयेश्वर कुमारपाल ने प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र सूरी के साथ सोमनाथ की यात्रा करके मन्दिर का सुधार किया। सौराष्ट्रपति राजा खंगार ने भी मन्दिर की श्रीवृद्धि में सहायता की। अन्त में 1783 ई० में शिवभक्ता साध्वी अहिल्याबाई होल्कर ने सोमनाथ का मन्दिर पुराने मन्दिर से कुछ दूर पर बनवाया। भारत की आजादी के बाद सरदार बल्लभ भाई पटेल ने महाराष्ट्र के काका साहब गाडगील की सलाह से श्रीसोमनाथ मन्दिर का जीर्णोद्धार किया। प्राचीन मन्दिर के ध्वंसावशेष पर ही नवीन सोमनाथ – मन्दिर का कार्य प्रारंभ हुआ और उसमें नवीन लिंग – विग्रह की प्राण – प्रतिष्ठा का कार्य शुक्रवार दि० 11 मई 1951, सुबह 9 – 46 बजे तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के कर कमलों द्वारा वेदमूर्ति तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी के वेदघोष से शुरू हुआ।

यहाँ जाने के तीन मार्ग हैं– एक रेल का, दूसरा समुद्री और तीसरा हवाई।

रेलमार्ग– पाटण (प्रभास) आने के लिये पश्चिमी रेलवे का टर्मिनस वेरावल है। बंबई, अहमदाबाद, धोलका, धोला, जेतलसर, जूनागढ़ होकर वेरावल आ सकते हैं तथा वीरमगाव, राजकोट, जेतलसर, जूनागढ़ होकर भी यहाँ आ सकते हैं। देहली की ओर से मेहसाणा, वीरमगाव, राजकोट, जेतलसर और जूनागढ़ होकर वेरावल आ सकते हैं।

समुद्री मार्ग– बंबई से समुद्री – जहाज द्वारा वेरावल पहुँच सकते हैं।

हवाई मार्ग– बंबई आदि से केशोद को हवाई सर्विस उपलब्ध है।

वेरावल – स्टेशन से प्रभासपट्टण के लिये अनेक साधन मिलते हैं। सरकार के यातायात – विभाग द्वारा बस का भी प्रबन्ध है, जो वेरावल से पाटणतक सुबह से सायंकालतक चलती रहती हैं। वेरावल

में पाटण-द्वार के समीप बस-स्टैंड है, जहाँ से पाटण जानेवाली बस छूटती है। वेरावल से प्रभासपाटण लगभग 3 मील की दूरी पर है जिसके लिये टैक्सी एवं रिक्शा आदि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।

वेरावल और पाटण में यात्रियों के ठहरने के लिये वेरावल-स्टेशन के पास अनेक होटल एवं धर्मशालायें हैं।

पानी के जहाज पर जानेवालों को रेल की अपेक्षा किराया बहुत कम देना पड़ता है, किन्तु उतरने-चढ़ने में कष्ट अधिक होता है और जिन लोगों को समुद्र-यात्रा का अभ्यास नहीं, उन्हें वमन आदि की तकलीफ भी हो सकती है।

इस समय सोमनाथ के नाम से सन् 1783 ई० में महारानी अहिल्याबाई का बनवाया हुआ एक और मन्दिर है, जो समुद्रतट से थोड़ी ही दूर पर बना है। सोमनाथ का ज्योतिर्लिङ्ग गर्भगृह के नीचे एक गुफा में 22 सीढ़ियाँ नीचे उतरने पर दृष्टिगोचर होता है। वहाँ बराबर दीपक जलता रहता है।

(2) श्रीमल्लिकार्जुन

यह ज्योतिर्लिङ्ग श्रीशैल पर है। वहाँ 51 शक्तिपीठों में से एक शक्तिपीठ भी है। यहाँ सती के देह का ग्रीवाभाग गिरा था। यहाँ भ्रमराम्बा देवी का मन्दिर है। वीरशैव मत के पञ्चाचार्यों में से एक जगद्गुरु श्रीपति पण्डिताराध्य की उत्पत्ति मल्लिकार्जुन लिङ्ग से ही मानी जाती है। यहाँ पर शिवजी का नाम अर्जुन तथा पार्वती देवी का नाम मल्लिका है। इस प्रकार इस ज्योतिर्लिङ्ग में शिव एवं पार्वती-दोनों की ज्योतियाँ प्रतिष्ठित हैं। शिवपुराण में इसके बारे में कहा गया है कि-

मल्लिकार्जुनसंज्ञश्चावतारः शंकरस्य वै।
द्वितीयः श्रीगिरौ तात भक्ताभीष्टफलप्रदः।।
संस्तुतो लिङ्गरूपेण सुतदर्शन हेतुतः।
गतस्तत्र महाप्रीत्या स शिवः स्वगिरेर्मुने।।
ज्योतिर्लिङ्गं द्वितीयं तद्दर्शनात् पूजनान्मुने।
महासुखकरं चान्ते मुक्तिदं नात्र संशयः।। (शिवपु. शतरु. सं. 42/10-12)

अर्थात्- श्रीशैल पर मल्लिकार्जुन नाम का द्वितीय ज्योतिर्लिङ्ग है। ये भगवान् शिव के अवतार हैं। इनके दर्शन-पूजन से भक्तों को अभीष्ट फल मिलता है। स्कन्द ने जब शंकरजी की प्रार्थना की, तब वे अत्यन्त प्रेम से कैलास छोड़कर लिंगरूप में पुत्र को देखने की इच्छा से वहाँ पधारे थे। मुने! यह दूसरा ज्योतिर्लिङ्ग दर्शन-पूजन आदि से बहुत सुख देता है और अन्त में मोक्ष भी प्रदान करता है, इसमें कोई संशय नहीं है।

चेन्नई के कृष्णा जिले में तथा कृष्णा नदी के तट पर श्रीशैल पर्वत स्थित है, जिसे दक्षिण का कैलास कहते हैं। महाभारत, शिवपुराण तथा पद्मपुराण आदि धर्मग्रन्थों में इसका वर्णन मिलता है। महाभारत में लिखा है कि श्रीशैल पर जाकर श्रीशिव का पूजन करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता

है। यही नहीं, ग्रन्थों में तो इसकी महिमा यहाँतक बतलायी गयी है कि श्रीशैल-शिखर के दर्शनमात्र से सब कष्ट दूर से ही भाग जाते हैं और अनन्त सुख की प्राप्ति होकर आवागमन के चक्र से मुक्ति मिल जाती है।

श्रीशैलशिखरं दृष्ट्वा .....।
..... पुनर्जन्म न विद्यते ।।
दुःखं हि दूरतो याति शुभमात्यन्तिकं लभेत् ।
जननीगर्भसम्भूतं कष्टं नाप्नोति वै पुनः ।। (शिवांक पृ. 549)

इस स्थान के सम्बन्ध में एक पौराणिक इतिहास यह है कि शङ्कर-सुवन श्रीगणेश और श्रीस्वामिकार्तिकेय विवाह के लिये लड़ने लगे। एक चाहते थे कि मेरा पहले विवाह हो और दूसरे चाहते थे कि मेरा। अन्त में भवानी-शङ्कर ने यह निर्णय दिया कि जो कोई पहले पृथ्वी-परिक्रमा कर डालेगा, उसी का विवाह पहले होगा। सुनते ही स्वामिकार्तिक तो दौड़ पड़े; श्रीगणेशजी ठहरे स्थूलकाय, वे कैसे दौड़ते? पर कोई बात नहीं; शरीर से स्थूल थे तो क्या, बुद्धि से तो स्थूल नहीं थे। झट एक उपाय ढूँढ़ निकाला। अपने माता पार्वती और पिता महेश्वर को आसन पर बैठा उन्हीं की सात बार परिक्रमा कर डाली और पूजन किया तथा-

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम्। (शिवपु. रु. सं. कु. खं. अ. 19/39)

– इस नियम के अनुसार पृथ्वी-प्रदक्षिणा के फल को पाने के अधिकारी बन गये। इधर जबतक स्वामिकार्तिक परिक्रमा करके वापस आये, तबतक बुद्धिविनायक श्रीगणेशजी का विश्वरूप प्रजापति की सिद्धि और बुद्धि नामवाली दो कन्याओं के साथ विवाह भी हो चुका था। विवाह ही नहीं, बल्कि सिद्धि के गर्भ से 'क्षेम' और बुद्धि से 'लाभ'– ये दो पुत्ररत्न भी उत्पन्न होकर उनकी गोद में खेलने लगे थे। स्वाभाविक ही मङ्गल-कामना से इधर-की-उधर लगाने में कुशल देवर्षि नारद महाराज से यह संवाद पाकर स्वामिकार्तिक जल उठे और माता-पिता के पैर छूने का दस्तूर करके रूठकर क्रौञ्च-पर्वत पर चले गये। माता-पिता ने नारद को भेजकर उन्हें वापस बुलाया, पर वे न आये। अन्त में माता का हृदय व्याकुल हो उठा और जगदम्बा पार्वती श्रीशिवजी को लेकर क्रौञ्च-पर्वत पर पहुँचीं; किंतु ये उनके आने की खबर पाते ही वहाँ से भी भाग खड़े हुए और तीन योजन दूर जाकर डेरा डाला। कहते हैं, क्रौञ्चपर्वत पर पहुँचकर श्रीशङ्करजी ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में प्रकट हुए और तब से श्रीमल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिङ्ग के नाम से प्रख्यात हैं।

उपर्युक्त कथा का एक अन्य रूप इस प्रकार है। जब शंकरपुत्र कार्तिकेय रूठकर दूर चले गये तो उनकी खोज में पार्वती दरदर भटकते हुए कदलीवन(जो मल्लिकार्जुन मन्दिर की पश्चिम दिशा में लगभग 20 कि. मी. पर स्थित है) में अपने पुत्र से मिल पायीं। माता ने कार्तिकेय को समझाने की

असफल कोशिश की। अन्त में पार्वती इसी वन में भील आदि वनवासियों के बीच उन्हीं के अनुरूप रहने लगीं। इधर काफी समय बीत जाने पर महादेवजी उमा की खोज करते उसी वन में पहुँच गये। वे भी वनवासी लोगों के बीच रम गये। वे एक भीलनी से प्रेम करने लगे। भीलनी ने अपने नृत्य – गायन द्वारा भोलेबाबा को मोह लिया। वह भीलनी साक्षात् उमा थी। आदिवासी लोगों ने दोनों का धूम – धाम से विवाह करा दिया। उनलोगों ने दोनों को इस वन में स्थायी रूप से रहने की प्रर्थना की। बनवासियों का प्रेम और भक्ति देखकर शंकर भगवान् ने इसी दक्षिण के कैलास पर दिव्य ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में स्थायी निवास किया। आज भी वहाँ के 'चेंचु' जाति के आदिवासी भगवान् शंकर को अपना दामाद मानते हैं। ज्योतिर्लिङ्ग के उत्सव में इस जाति का बड़ा सम्मान होता है।

इस ज्योतिर्लिङ्ग संबंधी दूसरी कथा इस प्रकार है। एक बार अर्जुन तीर्थयात्रा करते हुए इस कदलीवन में आये। उनकी धनुर्विद्या की परीक्षा लेने के लिये भगवान् शंकर ने भील – किरात का रूप धारण किया और जंगली सुअर का शिकार करने के लिये पीछे दौड़े। उसी समय अर्जुन ने भी बाण छोड़ा। दोनों के बाण सुअर के शरीर में घुस गये। सुअर पर दोनों अपना अधिकार जमाने लगे। फिर दोनों में युद्ध हुआ। अन्त में भगवान् शंकर अर्जुन के युद्ध से संतुष्ट हो अपने स्वाभाविकरूप में प्रकट होकर उसे पशुपत अस्त्र दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये। उस स्थान पर एक दिव्य ज्योतिर्लिङ्ग प्रकट हुआ और अर्जुन ने उसकी प्रतिष्ठा की जो कालान्तर में मल्लिकार्जुन के नाम से विख्यात हुआ।

एक अन्य कथा यह भी कही जाती है कि किसी समय इस पर्वत के निकट चन्द्रगुप्त नामक राजा की राजधानी थी। उसकी कन्या चन्द्रावती किसी विशेष विपत्ति से बचने के लिये अपने पिता के महल से भाग निकली और उसने पर्वतराज की शरण ली। वह वहीं ग्वालों के साथ कन्द – मूल और दूध से अपना जीवन – निर्वाह करने लगी। उसके पास एक सुन्दर श्यामा गौ थी। कहते हैं, कोई चुपचाप उस गाय का दूध दूह लेता था। एक दिन संयोग से चोर को दूध दुहते उसने देख लिया और क्रोध में भरकर उसे मारने दौड़ी; पर गौ के निकट पहुँचने पर उसे शिवलिङ्ग के अतिरिक्त और कोई न मिला। पीछे राजकुमारी चन्द्रावती ने उक्त शिवलिङ्ग पर एक सुन्दर मन्दिर बनवा दिया। यही शिवलिङ्ग आजकल मल्लिकार्जुन के नाम से प्रसिद्ध है।

पहले श्रीशैल का यह प्रदेश दुर्गम, कष्टप्रद तथा भयावना लगता था; फिर भी निष्ठा के बल पर हजारों भक्तगणों का यहाँ ताँता लगा रहता था। हिरण्यकश्यप, नारद, पाण्डव, श्रीराम आदि पुराण – प्रसिद्ध व्यक्तियों ने यहाँ आकर ज्योतिर्लिङ्ग के दर्शन किये। चीनी यात्री हु – एन – त्सांग ने भी श्रीमल्लिकार्जुन का सुन्दर वर्णन किया है। नागार्जुन, वसवेश्वर और ज्ञानेश्वरजी के पिता विठ्ठलपंत ने यहाँ के दर्शन किये हैं – ऐसा प्रमाण मिलता है। इस पर्वत पर पायी जानेवाली वनौषधियों पर शोध करके विद्वानों ने रसपुट तथा रसरत्नाकर जैसे आयुर्वेद के महान् ग्रन्थों का निर्माण किया है।

मल्लिका का अर्थ मोगरा तथा पार्वती दोनों होता है। कहा जाता है कि चन्द्रावती प्रतिदिन अपने

द्वारा स्थापित शिव की पूजा मोगरा तथा अर्जुन के फूलों से करती थी। अत: उसने शिवजी से यह वरदान माँगा कि आप यहाँ पर मल्लिकार्जुन के नाम से प्रसिद्ध हों। फलस्वरूप वे यहाँ पर मल्लिकार्जुन कहलाने लगे। चूँकि श्रीशैल पर शिवजी ने पार्वती तथा अर्जुन दोनों को अपनाया था इसलिये यह स्थान मल्लिका(पार्वती) और अर्जुन इन दोनों के संयुक्त नाम से पुकारा जाने लगा।

यहाँ के मन्दिर की बनावट तथा सुन्दरता से पुरातत्त्ववेत्ता अनुमान करते हैं कि इसको बने हुए कम-से-कम डेढ़-दो हजार वर्ष हुए होंगे। कहते हैं, इस पवित्र स्थान पर बड़े-बड़े राजा-महाराजातक सदा से आते रहे हैं। अब से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व श्रीविजयानगरम् राज्य के अधीश्वर महाराज कृष्णराय यहाँ पधारे थे और स्वर्ण-शिखरसहित एक सुन्दर मण्डप बनवा गये थे। उनके डेढ़ सौ वर्ष बाद, कहते हैं, हिंदूराज्य के उद्धारक श्रीशिवाजी महाराज भी पधारे थे और एक धर्मशाला बनवा गये थे। शिवभक्ता अहिल्याबाई होल्कर ने यहाँ की पातालगंगा पर 852 सीढ़ियों का एक मजबूत घाट का निर्माण करवाया था। इस स्थान पर अनेक शिवलिङ्ग मिला करते हैं। शिवरात्रि के अवसर पर यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है। एक गाँव-सा बस जाता है।

इस स्थान पर जाने के लिये यदि कलकत्ते से जाना हो तो दक्षिणपूर्व-रेलवे से प्रस्थान करके वाल्टेयर पहुँचे और वहाँ से मद्रास(चेन्नई) और दक्षिण-रेलवे के द्वारा बेजवाड़ा(विजयवाड़ा) जायँ। इस प्रकार वाल्टेयर से 138 मील की यात्रा करने के बाद वहाँ से गुंटकल जानेवाली गाड़ी पकड़कर फिर 188 मील चलकर नंद्याल स्टेशन पर उतर पड़ें और वहाँ से मोटर में बैठकर 28 मील दूर आत्माकूर ग्राम जायँ, वहाँ से नागाहुटी स्थान पर जा पहुँचें, जो आत्माकूर से बारह मील है और वहाँ पर महादेव और वीरभद्र स्वामी के तथा कई पवित्र झरनों के दर्शन करें। यहाँ से मल्लिकार्जुन का स्थान इकतीस मील दूर है। मार्ग दुर्गम पहाड़ी है, किंतु साथ ही मनोरम भी है और लूट-पाट का डर रहता है। बीच-बीच में विश्राम-स्थान भी बने हुए हैं। रास्ते में पानी कम मिलता है, इसलिये यात्रियों को चाहिये कि आत्माकूर से अपने साथ कुछ मीठा पानी ले लें। हैदराबाद से यह स्थान 230 कि. मी. है। वहाँ से बस या टैक्सी द्वारा पहुँच सकते हैं। समीपस्थ रेलवे स्टेशन, जो हुबली-गुण्टुर मीटरगेज लाइन पर पड़ता है, मारकपुर रोड है। यहाँ पर नंद्याल या कर्नूल रेलवे स्टेशन से भी जाया जा सकता है। हैदराबाद की ओर से आनेवाले यात्री कर्नूल रेलवे स्टेशन से आत्माकूर तथा नागाहुटी होते हुए बस से मल्लिकार्जुन पहुँच सकते हैं। मल्लिकार्जुन से नीचे पाँच मील की उतराई समाप्त करने पर कृष्णा नदी के स्नान का भी आनन्द मिलता है। कृष्णा यहाँ पाताल-गङ्गा के नाम से प्रसिद्ध है और उसमें स्नान करने का शास्त्रों में बड़ा माहात्म्य है। मेले के दिनों में रास्ते में पुलिस इत्यादि का प्रबन्ध भी रहता है।

श्रीशैल के शिखर पर वृक्ष नहीं हैं। यह दक्षिणी मन्दिरों के ढंग का पुराना मन्दिर है। एक ऊँची पत्थर की चाहारदीवारी है जिस पर हाथी-घोड़े बने हैं। इस परकोटे में चारों ओर द्वार हैं। द्वारों पर गोपुर बने हैं। इस प्राकार के भीतर एक प्राकार और है। दूसरे प्राकार के भीतर श्रीमल्लिकार्जुन का निज-मन्दिर

है। यह मन्दिर बहुत बड़ा नहीं है। मन्दिर में मल्लिकार्जुन – शिवलिङ्ग है। यह शिवलिङ्ग – मूर्ति लगभग 8 अंगुल ऊँची है और पाषाण के अनगढ़ अरघे में विराजमान है।

मन्दिर के बाहर एक पीपल – पाकर का सम्मिलित वृक्ष है। इसके चारों ओर पक्का चबूतरा है। आस – पास बीस – पच्चीस छोटे – छोटे शिव – मन्दिर हैं। मन्दिर के चारों ओर बावलियाँ हैं और दो छोटे सरोवर भी हैं। मल्लिकार्जुन मन्दिर के पीछे पार्वतीदेवी का मन्दिर है। यहाँ इनका नाम मल्लिका देवी है। मल्लिकार्जुन के निज – मन्दिर का द्वार पूर्व की ओर है। द्वार के सम्मुख सभामण्डप है। उसमें नन्दी की विशाल मूर्ति है। मन्दिर के द्वार के भीतर नन्दी की एक छोटी मूर्ति और है। शिवरात्रि को यहाँ शिव – पार्वती – विवाहोत्सव होता है।

मन्दिर के पूर्व द्वार से एक मार्ग कृष्णा नदीतक गया है। उसे यहाँ पातालगङ्गा कहते हैं। पातालगङ्गा मन्दिर से लगभग 2½ कि. मी. है। आधा मार्ग सामान्य उतराई का है और उसके पश्चात् 852 सीढ़ियाँ हैं। खड़े उतार की हैं। बीच – बीच में चार स्थान विश्राम करने के लिये बने हैं। पर्वत के पाददेश में कृष्णा नदी है। यात्री वहाँ स्नान करके चढ़ाने के लिये जल ले जाते हैं।

यहाँ पास में कृष्णा में दो नाले मिलते हैं। उस स्थान को लोग त्रिवेणी कहते हैं। कृष्णातट पर पूर्व की ओर जाने पर एक कन्दरा मिलती है। उसमें देवी तथा भैरवादि देवताओं की मूर्तियाँ हैं। कहा जाता है कि यह गुफा पर्वत में कई किलोमीटर भीतरतक चली गयी है।

मल्लिकार्जुन – मन्दिर से पश्चिम लगभग 3 कि. मी. पर भ्रमराम्बा देवी का मन्दिर है। अम्बाजी की मूर्ति भव्य है। आसपास प्राचीन मठादि के अवशेष हैं।

(3) श्रीमहाकालेश्वर[1]

श्रीमहाकालेश्वर – ज्योतिर्लिङ्ग, शिप्रा नदी के तट पर उज्जयिनी (उज्जैन) नगरी में है। यह उज्जयिनी, जिसका एक नाम अवन्तिकापुरी भी है, भारत की सुप्रसिद्ध सप्तपुरियों के अन्तर्गत है। स्कन्दपुराण के आवन्त्य – खण्ड में इस नगरी के सम्बन्ध में विशद वर्णन है। महाभारत एवं शिवपुराण में भी इसकी बड़ी महिमा गायी गयी है। लिखा है शिप्रा नदी में स्नान करके ब्राह्मण – भोजन कराने से समस्त पापों का नाश हो जाता है, दरिद्र की दरिद्रता जाती रहती है, आदि – आदि।

स्कंदपुराण में कहा गया है कि –

महाकालः सरिच्छिप्रा गतिश्चैव सुनिर्मला।
उज्जयिन्यां विशालाक्षी वासः कस्य न रोचयेत्।।
स्नानं कृत्वा नरो यस्तु महानद्यां हि दुर्लभम्।
महाकालं नमस्कृत्य नरो मृत्युं न शोचयेत्।।

1. श्रीमहाकालेश्वर का एक अति प्राचीन मन्दिर उदयपुर (मेवाड़) में भी है।

मृतः कीटः पतङ्गो वा रुद्रस्यानुचरो भवेत्।।

(स्कं. पु., अ. खं., अवन्तिक्षेत्रमाहा. 26/17-19)

अर्थात्-जहाँ भगवान् महाकाल हैं, शिप्रा नदी है और सुनिर्मल गति मिलती है, उस उज्जयिनी में भला, किसे रहना अच्छा न लगेगा। महानदी शिप्रा में स्नान, जो कठिनाई से प्राप्त होता है, तथा महाकाल को नमस्कार कर लेने पर मृत्यु की कोई चिन्ता नहीं रहती। कीट या पतंग भी मरने पर रुद्र का अनुचर होता है।

यहाँ महाराज विक्रमादित्य का चौबीस खंभों का दरबार-मण्डप, मङ्गल-ग्रह का जन्मस्थान मङ्गलेश्वर, भर्तृहरि की गुफा और सांदीपनि ऋषि का आश्रम है, जहाँ कहते हैं, भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीबलरामजी ने विद्याभ्यास किया था। यहाँ परमप्रतापी राजा विक्रमादित्य की राजधानी थी, जिसके दरबार में महाकवि कालिदास प्रभृति नवरत्न थे। यहाँ प्रति बारह वर्ष पीछे बृहस्पति के सिंहराशि में आने पर कुम्भ का मेला लगता है। इस स्थान को पृथ्वी का नाभिदेश कहा गया है। क्योंकि भारतीय ज्योतिषशास्त्र में देशान्तर की शून्य रेखा उज्जयिनी से ही प्रारंभ हुई मानी जाती थी। 51 शक्तिपीठों में से एक पीठ यहाँ भी है। यहाँ सती का कूर्पर(केहुनी) गिरा था। रुद्रसागर सरोवर के पास हरसिद्धि देवी का मन्दिर है; वहीं यह शक्तिपीठ है और यहाँ मूर्ति के बदले केहुनी की ही पूजा होती है।

इस अवंतिका नगरी में 7 सागर तीर्थ, 28 तीर्थ, 84 सिद्धलिंग, अष्ट भैरव, एकादश रुद्रस्थान, सैकड़ों देवताओं के मन्दिर, जल-कुण्ड एवं स्मारक हैं। उज्जैन का वर्णन प्राचीन धर्मग्रन्थों में मिलता है। रामायण के समय में सुग्रीव यहाँ आया था। बाणभट्ट का उपन्यास, शूद्रक का मृच्छकटिकम्, सोमदेव का कथासरित्सागर तथा कालिदास के अनेक ग्रंथ उज्जैन की पवित्र भूमि में रचे गये। यहाँ रचित सभी ग्रन्थ भारतीय संस्कृति-सभ्यता के प्रतीक हैं। विख्यात ज्योतिषी तथा गणितज्ञ वराहमिहिर ने पहली वेधशाला यहीं पर स्थापित की थी। यहाँ राजा भर्तृहरि की विरह-व्यथा, नीतिशतक, प्रद्योत की राजकन्या वासवदत्ता और उदयन की प्रेम-कहानी, इस नगर का प्राकृतिक सौन्दर्य आदि का सुन्दर वर्णन अनेक लेखकों ने किया है। इस नगरी में भगवान् शंकर के ज्योतिर्लिङ्ग बनकर प्रकट होने से इसका महत्त्व और भी बढ़ गया।

महाकालेश्वर-लिङ्ग की स्थापना के सम्बन्ध में पौराणिक इतिहास यह है कि एक समय उज्जैन नगरी में चन्द्रसेन नामक राजा राज्य करता था। वह भगवान् शङ्कर का बड़ा भक्त था। एक दिन जब वह शिवार्चन में तन्मय हो रहा था, श्रीकर नामक एक पाँच वर्ष का गोप-बालक अपनी माता के साथ वहाँ आ निकला। शिव-पूजन को देखकर उसे बड़ा कौतूहल हुआ और इसी प्रकार ही स्वयं भी करने के लिये वह उत्कण्ठित हो उठा। घर लौटते समय रास्ते से एक पत्थर का टुकड़ा उसने उठा लिया और घर आकर उसी को शिवरूप में स्थापित कर पुष्प-चन्दनादि से परम श्रद्धापूर्वक पूजा करने लगा और ध्यान मग्न हो गया। बहुत देर हो गयी। माता भोजन के लिये बुलाने आयी; पर वह टेरते-टेरते

थक गयी, बालक की समाधि नहीं टूटी। अन्त में झल्लाकर उसने पत्थर का टुकड़ा वहाँ से उठाकर दूर फेंक दिया और लड़के को जबरदस्ती घर में लाने लगी। पर उसकी जबरदस्ती चली नहीं। सरलचित्त भक्त – बालक ने विलाप करते हुए शम्भु को पुकारना शुरू किया। हताश होकर माता घर में चली गयी, पर बच्चे का विलाप फिर भी जारी रहा। क्रन्दन करते – करते उसे मूर्च्छा आ गयी। अन्ततोगत्वा भोलानाथ प्रसन्न हुए और ज्यों ही वह होश में आकर नेत्रपट खोलता है तो देखता क्या है कि सामने एक अति विशाल स्वर्णकपाटयुक्त रत्नजटित मन्दिर खड़ा है और उसके अंदर एक अति प्रकाशयुक्त ज्योतिर्लिङ्ग देदीप्यमान हो रहा है। बच्चा आश्चर्य – सागर में डूब गया और फिर भगवान् शिव की स्तुति करने लगा। पीछे माता ने यह दृश्य देखा तो आनन्दोल्लास से अपने लाल को उठाकर गले से लगा लिया। उधर राजा चन्द्रसेन को जब इस अद्भुत घटना का संवाद मिला, तब वह भी वहाँ दौड़ा आया और बात सच पाकर बच्चे को प्यार एवं सराहना करने लगा। इतने में अञ्जनिसुवन श्रीहनुमान्जी वहाँ प्रकट हो गये और उपस्थित जनों से कहने लगे –

'मनुष्यो! संसार में शीघ्र कल्याण करनेवाला भगवान् शिव को छोड़कर और कोई नहीं है। तुमलोग इस गोपबालक को प्रत्यक्ष देख रहे हो –इसने कौन सी तपस्या की है। जो फल ऋषि – मुनि सहस्त्रों वर्ष की कठिन तपस्या से भी नहीं पाते, वह इस बालक ने अनायास ही प्राप्त कर लिया। यह आशुतोष – भगवान् की दया का ही फल है। इसलिये तुमलोग भी इनके दर्शन से कृतार्थ होओ और यह स्मरण रक्खो कि इस बालक की आठवीं पीढ़ी में महायशस्वी नन्द गोप का जन्म होगा, जिनके यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण पुत्ररूप से अनेक प्रकार की अद्भुत लीलाएँ करेंगे।'

इतना कहकर महावीर हनुमान्जी अन्तर्धान हो गये और इन महाकाल – भगवान् की अर्चना करते – करते अन्त में श्रीकर गोप और राजा चन्द्रसेन सपरिवार शिवधाम को चले गये।

एक दूसरा इतिहास यह भी है कि किसी समय इस अवन्तिकापुरी में एक अग्निहोत्री वेदपाठी ब्राह्मण रहता था, जो अपने देवप्रिय, प्रियमेधा, सुकृत और सुव्रत नाम के चार पुत्रों के साथ शिवभक्ति तथा धर्मनिष्ठा की पताका फहरा रहा था। उसकी कीर्ति सुनकर ब्रह्माजी से वरप्राप्त एक महामदान्धदूषण नामक असुर, जो रत्नमाल पर्वत पर निवास करता था, अपने दल – बलसहित चढ़ आया। लोगों में त्राहि – त्राहि मच गयी। अन्ततः उस ब्राह्मण की शिवभक्ति के प्रताप से भगवान् भूतभावन प्रकट हो गये और एक हुंकार से ही असुर को इस दुनिया से विदा कर दिया; पीछे संसार के कल्याणार्थ सदा वहीं वास करने का उस ब्राह्मण को वरदान देकर शिवजी अन्तर्धान हो गये। तब से वे लिङ्गरूप में वहाँ सदा विराजमान रहते हैं। ज्योतिर्लिङ्ग के समीप ही माता पार्वती तथा गणेशजी की भी मूर्तियाँ हैं। भगवान् वहाँ भयंकर 'हुंकार' – सहित प्रकट हुए, इसलिये उनका नाम 'महाकाल' पड़ा।

उज्जैन में शिप्रा नदी बहती है, जो अत्यन्त पवित्र मानी गयी है। कहा जाता है कि यह भगवान् विष्णु के शरीर से उत्पन्न हुई नदी है। उज्जैन स्टेशन से लगभग 3 किलोमीटर की दूरी पर शिप्रा स्थित

है। इस पर पक्के घाट बँधे हैं। जिनमें नरसिंह घाट, रामघाट, पिशाचमोचन-तीर्थ, छत्रीघाट तथा गन्धर्वतीर्थ प्रसिद्ध हैं। घाटों पर मन्दिर बने हैं। बृहस्पति के सिंहराशि में होने पर शिप्रास्नान का बहुत महत्त्व माना गया है।

महाकाल उज्जैन का प्रधान मन्दिर है। कहा गया है-

आकाशे तारकं लिङ्गं पाताले हाटकेश्वरम्।
मृत्युलोके महाकालं लिङ्गत्रयं नमोऽस्तुते।।

महाकाल-मन्दिर स्टेशन से लगभग 1½ किलोमीटर दूर है। यह मन्दिर पँचमंजिला और बड़ा विशाल है तथा शिप्रा नदी से थोड़ी दूर पर स्थित है। मन्दिर के ऊर्ध्वभाग में श्रीओङ्कारेश्वर की प्रतिमा है और सबसे नीचे के मंजिल में, जो पृथ्वी की सतह से भी नीचा है, श्रीमहाकालेश्वर विराजते हैं। महाकालेश्वर-लिङ्गमूर्ति विशाल है जो शालग्राम पत्थर से बनी है जिसपर चाँदी मढ़ा हुआ है। चाँदी की जलहरी (अरघे) में नाग परिवेष्ठित है। इसके एक ओर गणेशजी हैं, दूसरी ओर पार्वती और तीसरी ओर स्वामिकार्तिक हैं। वहाँ एक घृतदीप और एक तेलदीप जलता रहता है। मन्दिर के ऊपर प्राङ्गण के दक्षिण भाग में कई मन्दिर हैं, जिनमें अनादि कालेश्वर तथा बृद्धकालेश्वर (जूने महाकाल) के मन्दिर विशाल हैं। महाकाल मन्दिर के पास (नीचे) सभामण्डप है और उसके नीचे कोटितीर्थ नामक सरोवर है। सरोवर के आसपास छोटी-छोटी शिव-छतरियाँ हैं। महाकालेश्वर के सभामण्डप में श्रीराम मन्दिर है और रामजी के पीछे अवन्तिकापुरी की अधिष्ठात्री अवन्तिका देवी हैं। यात्री लोग रामघाट पर तथा कोटितीर्थ नामक कुण्ड में स्नान एवं श्राद्ध करके पास में ही अगस्त्येश्वर, कोटीश्वर, केदारेश्वर, हरसिद्धिदेवी (महाराज विक्रमादित्य की कुलदेवी) आदि के दर्शन करते हुए महाकालेश्वर पहुँचते हैं। प्रात:काल प्रतिदिन महाकालेश्वर को चिता-भस्म लगाया जाता है। उस समय का दर्शन प्रत्येक यात्री को अवश्य करना चाहिये। यहाँ और भी अनेक मन्दिर हैं, जिनमें से अधिकांश महाराजा विक्रमादित्य के बनवाये हुए हैं।

अवन्तिका की पंचक्रोशी यात्रा होती है, जिसमें पिङ्गलेश्वर, कायावरोहणेश्वर, बिल्वेश्वर, दुर्धरेश्वर और नीलकण्ठेश्वर के स्थान आ जाते हैं। इसके अलावा अन्य यात्रायें भी की जाती हैं। जैसे-अष्टविंशतितीर्थ-यात्रा (जिसमें 28 तीर्थ हैं, जो प्राय: सब के सब शिप्रा के तट पर हैं), महाकाल यात्रा (जो रुद्र सागर से प्रारंभ होती है), क्षेमयात्रा, नगर प्रदक्षिणा, नित्ययात्रा (जिसमें शिप्रास्नान, नागचण्डेश, कोटेश्वर, महाकाल, अवन्तिकादेवी, हरसिद्धिदेवी तथा अगस्त्येश्वर के दर्शन शामिल हैं), द्वादशयात्रा (जो पिशाचमोचन तीर्थ से प्रारंभ करनी चाहिये), सप्तसागरयात्रा, अष्टमहाभैरव, एकादशरुद्र, देवीस्थान तथा शिवलिङ्गयात्रा (जिसमें अवन्तिक्षेत्र में स्थित असंख्य शिवलिङ्गों में से प्रसिद्ध 84 लिङ्ग आते हैं)।

भक्तगणों द्वारा अर्पित द्रव्य से पहले यह मन्दिर वैभवसम्पन्न था। हीरे-माणिक से बने अलंकार, सहस्त्र रत्नदीप, सोने-चांदी से बनी पूजा सामग्री, सोने का शिखर और चाँदी के द्वार तथा भण्डारगृह के

अनगिनत धन-दौलत इस मन्दिर की शान बढ़ाते थे। परन्तु 1265 ई० में दिल्ली का बादशाह शमशुद्दिन अल्तमश ने इस मन्दिर पर हमला करके सारी संपत्ति लूट ली, मन्दिर की तोड़-फोड़ की, महाकाल की मूर्ति को उखाड़ कर उसे कोटि-तीर्थ में फेंक दिया तथा मन्दिर के स्थान पर मस्जिद खड़ी कर दी। जब दिल्ली के धर्मान्ध बादशाहों का पतन हुआ, तब सरदार राणोजी शिंदे ने 1734 ई० में रामचन्द्र बाबा शेणवी के हाथों उस मस्जिद को गिराकर पुराने स्थान पर ही विशाल मन्दिर का निर्माण किया। कोटितीर्थ में फेंकी हुई लिंगमूर्ति को निकालकर उसकी मन्दिर में यथाविधि स्थापना की।

मध्यरेलवे की भोपाल-उज्जैन और आगरा-उज्जैन लाइनें हैं तथा पश्चिमी रेलवे की नागदा-उज्जैन और फतेहाबाद-उज्जैन लाइनें हैं। इनमें किसी भी लाइन से उज्जैन पहुँच सकते हैं। पश्चिमी रेलवे का उज्जैन जंक्शन रेलमार्ग द्वारा राजकोट, बम्बई, दिल्ली, देहरादून, फैजाबाद, बनारस, बिलासपुर, कोचीन तथा हावड़ा आदि से सीधा जुड़ा है।

(4) ओङ्कारेश्वर और अमलेश्वर[1]

इस ज्योतिर्लिङ्ग की एक विशेषता यह है कि यहाँ दो ज्योतिर्लिङ्ग हैं-ओङ्कारेश्वर और अमलेश्वर। इन दोनों को द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों की गिनती करते समय एक ही गिना जाता है।

यह स्थान नर्मदा नदी के तट पर अवस्थित है। उज्जैन से खंडवा जानेवाली पश्चिमी-रेलवे की लाइन पर ओंकारेश्वर रोड नाम का स्टेशन है, वहाँ से यह स्थान 7 मील दूर है। उज्जैन से ओंकारेश्वर रोड 89 मील और खंडवा से 37 मील है। पश्चिमी रेलवे की अजमेर-खंडवा लाइन पर खंडवा से 37 मील पहले ओंकारेश्वर रोड स्टेशन आता है। वहाँ नर्मदा नदी की दो धाराएँ होकर बीच में एक टापू-सा बन गया है, जिसे मान्धाता पर्वत या शिवपुरी कहते हैं। एक धारा पर्वत के उत्तर की ओर बहती है और दूसरी दक्षिण की ओर। दक्षिण की ओर बहनेवाली प्रधान धारा समझी जाती है, इसे नाव द्वारा पार करते हैं। किनारे पर पक्के घाट बने हुए हैं। नाव पर से दोनों ओर का दृश्य बहुत सुहावना मालूम होता है। इसी मान्धाता पर्वत पर ओङ्कारेश्वर अवस्थित हैं। प्रसिद्ध सूर्यवंशीय राजा मान्धाता ने, जिनके पुत्र अम्बरीष और मुचुकुन्द दोनों प्रसिद्ध भगवद्भक्त हो गये हैं तथा जो स्वयं बड़े तपस्वी एवं यज्ञों के कर्त्ता थे, इस स्थान पर घोर तपस्या करके शङ्करजी को प्रसन्न किया था। इसी से इसका नाम मान्धाता पड़

1. द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में ओङ्कारेश्वर तो है ही, उसके साथ-साथ अमलेश्वर का नाम भी लिया जाता है। नाम ही नहीं, दोनों का अस्तित्व भी पृथक्-पृथक् है; अमलेश्वर का मन्दिर नर्मदाजी के दक्षिण किनारे की बस्ती में है। पर दोनों की गणना एक ही में की गयी है। इसका इतिहास यों है कि एक बार विन्ध्य पर्वत ने पार्थिवार्चनसहित ओङ्कारनाथ की छः मासतक विकट आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर शिवजी महाराज प्रकट हुए और उसे मनोवाञ्छित वर प्रदान किया। उसी समय वहाँ देवता और ऋषिगण भी पधारे, जिनकी प्रार्थना पर आपने ॐकार नामक लिङ्ग के दो भाग किये। इनमें से एक में आप प्राणरूप से विराजे, जिससे उसका नाम ओङ्कारेश्वर पड़ा और पार्थिवलिङ्ग से जो प्रकट हुए, वे परमेश्वर (अमरेश्वर या अमलेश्वर) नाम से प्रख्यात हुए। (शिवपु. कोटिरु. सं. अध्याय 18)

गया। मान्धाता टापू का क्षेत्रफल लगभग 2½ वर्ग किलोमीटर होगा। यह एक पहाड़ी है, जो एक ओर कुछ ढालू है। इसके एक ओर नर्मदाजी बहती हैं और दूसरी ओर नर्मदा की ही एक धारा है, जिसे लोग कावेरी कहते हैं। द्वीप के अन्त में यह कावेरी-धारा नर्मदा में मिल जाती है। इस मान्धाता द्वीप का आकार ॐकार से मिलता-जुलता है। इस पर्वत के अधिकांश मन्दिर पेशवाओं के बनवाये हुए हैं। ओङ्कारजी का मन्दिर भी इन्हीं का बनवाया हुआ बतलाते हैं। मन्दिर में दो कोठरियों में से होकर जाना पड़ता है। भीतर अँधेरा रहने के कारण बराबर दीपक जलता रहता है।

मोटर या बस जहाँ यात्री को छोड़ देती है, वहाँ नर्मदाकिनारे जो बस्ती है, उसे विष्णुपुरी कहते हैं। यहाँ नर्मदाजी पर पक्का घाट है। नौका द्वारा नर्मदा को पार करके यात्री मान्धाता द्वीप में पहुँचते हैं। उस ओर भी पक्का घाट है। यहाँ घाट के पास नर्मदाजी में कोटितीर्थ या चक्रतीर्थ माना जाता है। यहीं स्नान करके यात्री सीढ़ियों से ऊपर चढ़कर ओंकारेश्वर-मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं। मन्दिर तट पर ही कुछ ऊँचाई पर है।

श्रीओंकारेश्वर की लिङ्गमूर्ति अनगढ़ है। अर्थात् यह गढ़ा हुआ नहीं है- प्राकृतिकरूप में है। यह मूर्ति मन्दिर के शिखर(गुम्बज) के ठीक नीचे न होकर एक ओर हटकर है। मूर्ति के चारों ओर जल भरा रहता है। मन्दिर का द्वार छोटा है-ऐसा लगता है जैसे गुफा में जा रहे हों। पास में ही पार्वतीजी की मूर्ति है। मन्दिर के हाते में पंचमुख गणेशजी की मूर्ति है। ओंकारेश्वर मन्दिर में सीढ़ियाँ चढ़कर दूसरी मंजिल पर जाने पर महाकालेश्वर लिङ्ग-मूर्ति के दर्शन होते हैं। यह मूर्ति शिखर के नीचे है। तीसरी मंजिल पर वैद्यनाथेश्वर लिङ्गमूर्ति है। यह भी शिखर के नीचे है।

ओंकारेश्वर के रूप में प्रकट होने की भगवान् शिव की कथाएँ इस प्रकार हैं। प्राचीन काल में दानवों ने देवों को पराजित किया था। दानवों के उत्पात से इन्द्रादि देवगणों ने चिन्तित हो फिर से बल प्राप्त करने के लिये महादेवजी को पुकारा। फलत: महादेवजी ने दिव्य ज्योतिर्मय ओंकाररूप धारण किया। पाताल से निकलकर भगवान् शंकर नर्मदा तटपर लिंगरूप में प्रकट हुए। देवगणों ने उस लिंग की स्थापना करके आराधना शुरू की। इससे भगवान् शंकर प्रसन्न हुए और उनकी कृपा से बल पाकर देवों ने दानवों का नाश कर खोया स्वर्ग पुन: प्राप्त किया। ओंकार ज्योतिर्लिङ्ग के स्थान पर ब्रह्मा एवं विष्णु ने भी निवास किया। अत: नर्मदातट ब्रह्मपुरी, विष्णुपुरी तथा रुद्रपुरी का त्रिपुरी क्षेत्र बन गया। आगे चल कर पुराणकाल में इन्द्र की कृपा से युवनाश्वपुत्र मांधाता यहाँ राज करता था। उसकी तपस्या से भगवान् शंकर प्रसन्न हुए। मांधाता ने इस पवित्र स्थान पर अपनी राजधानी बनायी। अत: इस स्थान को ओंकार-मान्धाता नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार यहाँ पर विन्ध्य पर्वत ने भी घोर तप कर ओंकारेश्वर शिव को प्रकट किया। अगस्त्य जैसे ऋषियों ने भी यहाँ तप-साधना की थी तथा आश्रम बनाये थे।

1063 ई० में परमार राजा उदयादित्य ने अमलेश्वर मन्दिर में चार संस्कृत स्तोत्र शिलालेख के रूप में जड़वाया था। शिवमहिम्न:स्तोत्र का शिलालेख भी यहाँ मिलता है।

ओंकारेश्वर द्वीप पर पहले आदिवासी लोगों की बस्ती थी। वह स्थान कालिका देवी का था।

माता के भक्त जो भैरवगण कहलाते थे, यात्रियों को बहुत सताते थे, उन्हें बलि चढ़ाते थे। आगे चलकर दरियाईनाथ नाम के सिद्ध पुरुष ने वहाँ अपना तख्त स्थापित करके उन भैरवगणों के अत्याचार को रोका। तब से वहाँ यात्रियों का आना-जाना प्रारंभ हुआ।

उसके बाद वहाँ भीलों का शासन चलता रहा । 1195 ई० में राजा भारत सिंह चौहान ने भीलों का राज्य जीतकर उस ओंकार-मान्धाता के वैभव को आगे बढ़ाया। भारतसिंह चौहान का राजमहल आज भी वहाँ खण्डहर की अवस्था में दिखाई देता है। पेशवा बाजीराव द्वितीय ने यहाँ के पुराने मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। इसके बाद अहिल्याबाई होलकर ने इस पुराने तीर्थस्थान में कई सुधार किये। विशाल, मजबूत और सुन्दर घाट बनवाया, कोटिलिंगार्चन की परम्परा डाली। बाईस ब्राह्मण हाथ में 13 सौ छेदवाला एक लकड़ी का तख्ता लेते हैं। उन छेदों में मिट्टी के शिवलिंग बनाकर उनकी पूजा की जाती है तथा पूजा के बाद उन लिंगों को नर्मदा में विसर्जित कर देते हैं। यह कार्य वर्षभर चलता रहता है। इसी विधि को कोटिलिंगार्चन कहते हैं।

कुछ लोग इस पर्वत को ओङ्काररूप मानते हैं और उसकी परिक्रमा करते हैं। प्राचीन मन्दिरों में सिद्धेश्वर महादेव का मन्दिर भी दर्शनीय है। परिक्रमा में और भी कई मन्दिर हैं, जिनके कारण इस पर्वत का दृश्य साक्षात् ओङ्कारस्वरूप ही दिखता है। ओङ्कारेश्वर का मन्दिर उस ओङ्कार में चन्द्रस्थानीय मालूम होता है। यहाँ लोग महादेवजी को चने की दाल चढ़ाते हैं। यात्रियों को रात्रि की शयन-आरती के दर्शन अवश्य करने चाहिये। पैदल यात्रा करने से बीच में एक खड़ी पहाड़ी मिलती है। कहते हैं पहले कुछ लोग सद्योमुक्ति की अभिलाषा से इस पहाड़ी पर से नदी में कूदकर प्राण दे देते थे। सन् 1824 ई० से अंग्रेज-सरकार ने सती-प्रथा की भाँति इस प्राणनाश की प्रथा को भी, जिसे 'भृगुपतन' कहते थे, बंद करा दिया। पैदल-यात्रा का मार्ग पत्थर, कंकड़ ओर बालू में से होकर गया है, जिससे यात्रियों को कुछ कष्ट अवश्य होता है। कार्तिकी पूर्णिमा को इस स्थान पर बड़ा भारी मेला लगता है। शिवपुराण में श्रीओङ्कारेश्वर और श्रीअमलेश्वर के दर्शन तथा नर्मदास्नान का बड़ा माहात्म्य वर्णित है। स्नान ही नहीं, नर्मदा के दर्शनमात्र से पवित्रता मानी गयी है।

स्कंदपुराण (रेखाखण्ड) में कहा गया है कि-

देवस्थानसमं ह्येतत् मत्प्रसादाद् भविष्यति।
अन्नदानं तपः पूजा तथा प्राणविसर्जनम्।
ये कुर्वन्ति नरास्तेषां शिवलोकनिवासनम्।। (तीर्थांक पृ. 230)

अर्थात् ओंकारेश्वर तीर्थ अलौकिक है। भगवान् शंकर की कृपा से यह देवस्थान के तुल्य है। यहाँ जो अन्नदान, तप, पूजा करते अथवा मृत्यु को प्राप्त होते हैं, उनका शिवलोक में निवास होता है।

ओंकारेश्वर-रोड से ओङ्कारेश्वर जाने के लिये मार्ग सघन वृक्षावली से घिरा हुआ होने से बड़ा

ठंढा रहता है। दोनों ओर सागवान के बड़े-बड़े वृक्ष हैं, जो ठेठ नर्मदा के तीरतक चले गये हैं। किनारे पर दो छोटी-छोटी पहाड़ियाँ अगल-बगल में स्थित हैं। इन्हें 'विष्णुपुरी' और 'ब्रह्मपुरी' कहते हैं। इन दोनों के बीच में कपिलधारा नामक नदी बहती है जो नर्मदा में जा मिलती है। 'ब्रह्मपुरी' और 'विष्णुपुरी' में पक्के घाट बने हुए हैं और कई मन्दिर भी हैं। बहुत-से लोग ओङ्कारेश्वर की परिक्रमा नाव पर ही करते हैं।

जान पड़ता है, किसी छिद्रद्वारा ओङ्कारजी की जलहरी का सम्बन्ध नीचे नर्मदाजी से है; क्योंकि भेंट-पूजा के समय पुजारी लोग अपना हाथ जलहरी में लगाये रहते हैं और लोग जो कुछ चढ़ाते हें, उसे तुरंत ले लेते हैं; अन्यथा वह कदाचित् सीधा नर्मदाजी में जा पहुँचे। सोमवार के दिन ओङ्कारजी की पञ्चमुखी स्वर्ण-प्रतिमा जलविहार के लिये नाव पर घुमायी जाती है। यह स्थान स्वास्थ्य के लिये भी बहुत हितकर बताया जाता है।

मान्धाता टापू में ओंकारेश्वर की दो परिक्रमाएँ होती हैं। एक छोटी और एक बड़ी। ओंकारेश्वर की यात्रा तीन दिन की मानी जाती है। इस तीन दिन की यात्रा में यहाँ के सभी तीर्थ आ जाते हैं। अन्तिम दिन मान्धाता द्वीप से नर्मदा पार करके इस ओर विष्णुपुरी और ब्रह्मपुरी की यात्रा की जाती है। विष्णुपुरी के पास गोमुख से बराबर जल गिरता रहता है। यह जल जहाँ नर्मदा में गिरता है, उसे कपिला-संगम-तीर्थ कहते हैं। वहाँ स्नान और मार्जन किया जाता है। गोमुख की धारा गोकर्ण और महाबलेश्वर लिंगों पर गिरती है। यह जल त्रिशूलभेद कुण्ड से आता है। इसे कपिलधारा कहते हैं। वहाँ से इन्द्रेश्वर और व्यासेश्वर का दर्शन करके अमलेश्वर का दर्शन करना चाहिये।

यह पहले बताया जा चुका है कि अमलेश्वर भी ज्योतिर्लिङ्ग है। अमलेश्वर-मन्दिर अहिल्याबाई का बनाया हुआ है। गायकवाड़ राज्य की ओर से नियत किये हुए बहुत से ब्राह्मण यहाँ पार्थिव-पूजन किया करते थे। यात्री चाहे तो पहले अमलेश्वर का दर्शन करके तब नर्मदा पार होकर ओंकारेश्वर जाय; किन्तु नियम पहले ओंकारेश्वर का दर्शन करके लौटते समय अमलेश्वर-दर्शन का ही है। अमलेश्वर की प्रदक्षिणा में वृद्धकालेश्वर, बाणेश्वर, मुक्तेश्वर, कर्दमेश्वर और तिलभाण्डेश्वर के मन्दिर मिलते हैं।

विष्णुपुरी में अमलेश्वर तथा भगवान् विष्णु के मन्दिर दर्शनीय हैं। विष्णुपुरी से नर्मदा पार करने पर मान्धाता द्वीप में मुख्य मन्दिर ओंकारेश्वर का ही है। इसके अतिरिक्त द्वीप पर कावेरी-संगम के पास रणमुक्तेश्वर-मन्दिर के समीप गौरी-सोमनाथ का मन्दिर प्राचीन है। इसमें सोमनाथ का विशाल लिङ्ग है। इससे थोड़ी दूर पर सिद्धेश्वर का प्राचीन विशाल मन्दिर है।

अमरे(ले)श्वर के माहात्म्य के बारे में स्कंदपुराण(रेवाखण्ड 28/133) में कहा गया है कि-

अमराणां शतैश्चैव सेवितो ह्यमरेश्वरः।
तथैव ऋषिसंघैश्च तेन पुण्यतमो महान्।। (तीर्थांक पृ. 230)

अर्थात् – महान् पुण्यतम अमरेश्वर तीर्थ सदा सैकड़ों देवता तथा ऋषिसंघों द्वारा सेवित है। अतएव यह महान् पवित्र है।

(5) केदारनाथ

शास्त्रों में केदारेश्वर की बड़ी महिमा है। उत्तराखण्ड में बदरीनाथ और केदारनाथ – ये दो प्रधान तीर्थ हैं, दोनों के दर्शनों का बड़ा माहात्म्य है। केदारनाथ के सम्बन्ध में लिखा है कि जो व्यक्ति केदारेश्वर के दर्शन किये बिना बदरीनाथ की यात्रा करता है, उसकी यात्रा निष्फल जाती है–

अकृत्वा दर्शनं वैश्य ! केदारस्याघनाशिनः ।
यो गच्छेद् बदरीं तस्य यात्रा निष्फलतां व्रजेत् ।। (तीर्थांक पृ. 469)

और केदारेश्वर सहित नर – नारायण – मूर्ति के दर्शन का फल समस्त पापों के नाशपूर्वक जीवन्मुक्ति की प्राप्ति बतलाया गया है –

तथैव रूपं दृष्ट्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते।
जीवन्मुक्तो भवेत् सोऽपि यो गतो बदरीवने।।
दृष्ट्वा रूपं नरस्यैव तथा नारायणस्य हि।
केदारेश्वरशंभोश्च मुक्तभागी न संशयः।। (शिवपु. कोटिरु. सं. 19/20-21)

स्कंद के पूछने पर भगवान् शिव एक स्थल पर कहते हैं कि "केदार के दर्शन, स्पर्श तथा भक्तिभाव से पूजन करने पर कोटि – कोटि जन्मों का पाप तत्काल भस्म हो जाता है। इस क्षेत्र में विशेषतः मैं अपनी सम्पूर्ण कला से स्थित रहता हूँ। ..... केदारक्षेत्र में मेरे लिंग के पूजन से मनुष्यों की मुक्ति हो जाती है। ..... केदारसंज्ञक महालिंग का दर्शन करके मनुष्य पुनर्जन्म का भागी नहीं होता।" (संक्षिप्त स्कंदपुराणांक, वैष्णवखण्ड – बदरिकाश्रम माहात्म्य, अध्याय 1, पृ. 303)

केदारेश्वर में भक्ति रखनेवाले जो पुरुष वहाँ की यात्रा आरम्भ करके उनके पासतक पहुँचने के पहले मार्ग में ही मर जाते हैं, वे भी मोक्ष पा जाते हैं – इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

केदारेशस्य भक्ता ये मार्गस्थास्तस्य वै मृताः।
तेऽपि मुक्ता भवन्त्येव नात्र कार्या विचारणा।। (शिवपु. कोटिरु. सं. 19/22)

केदारनाथ की महिमा व्यासस्मृति, महाभारत, लिंग, वामन, पद्म, कूर्म, गरुड़, सौर, ब्रह्मवैवर्त शिव एवं स्कंद आदि पुराणों में वर्णित है।

इस ज्योतिर्लिङ्ग की स्थापना का इतिहास संक्षेप में यह है कि हिमालय के केदार – शृङ्ग पर विष्णु के अवतार महातपस्वी नर और नारायण ऋषि तपस्या करते थे। उनकी आराधना से प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर प्रकट हुए और उनके प्रार्थनानुसार ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में वहाँ प्रकट हुए और उसी रूप में वहाँ सदा वास करने का वर प्रदान किया। 'केदार' नाम – संबंधी कथा के लिये इसी पुस्तक के

लेख 'देवराज इन्द्र की शिवभक्ति' वाला अध्याय देखें।[1]

केदारनाथजी का प्रथम मन्दिर पाण्डवों का बनाया हुआ माना जाता है। समस्त धार्मिक लोग सर्वप्रथम केदारेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग का दर्शन करने के बाद ही बद्रीनाथ के दर्शन को जाते हैं। वर्तमान केदारनाथ का मन्दिर भव्य एवं सुन्दर है। पौराणिक मान्यता के अनुसार महिषरूपधारी भगवान् शंकर के विभिन्न अंग पाँच स्थानों में प्रतिष्ठित हुए – जिन्हें पंचकेदार[2] कहे जाते हैं। उनमें से (तृतीय केदार) तुंगनाथ में बाहु, (चतुर्थ केदार) रुद्रनाथ में मुख, (द्वितीय केदार) मदमहेश्वर में नाभि, (पंचम केदार) कल्पेश्वर में जटा तथा (इस प्रथम केदार) केदारनाथ में पृष्ठ भाग और पशुपतिनाथ नेपाल में सिर माना जाता है। केदारनाथ में भगवान् शंकर का नित्य सांनिध्य बताया गया है।

केदारनाथ में कोई निर्मित मूर्ति नहीं है। बहुत बड़ा त्रिकोण पर्वत – खण्ड सा है। पाण्डव लोग अपना गोत्रवध का पाप छुड़ाने के लिये केदार तीर्थ में गये तब शिवजी भैंसे का रूप धारण कर वहाँ से भाग चले। पाण्डवों की प्रार्थना पर प्रसन्न हो शिवजी अपने पिछले धड़ से वहाँ स्थित हुए। कहा जाता है कि इस मन्दिर का जीर्णोद्धार आदि शंकराचार्य ने करवाया था और यहीं उन्होंने देह – त्याग किया था।

केदारनाथ पर्वतराज हिमालय के केदारनामक शृङ्ग पर अवस्थित है। शिखर के पूर्व की ओर अलकनन्दा के सुरम्य तट पर बदरीनारायण अवस्थित हैं और पश्चिम में मन्दाकिनी के किनारे श्रीकेदारनाथ विराजमान हैं। अलकनन्दा और मन्दाकिनी – ये दोनों नदियाँ रुद्रप्रयाग में मिल जाती हैं और देवप्रयाग में इनकी संयुक्त धारा गङ्गोत्तरी से निकलकर आयी हुई भागीरथी गङ्गा का आलिङ्गन करती है। इस प्रकार जब हम गङ्गास्नान करते हैं, तब हमारा सीधा सम्बन्ध श्रीबदरी और केदार के चरणों से हो जाता है। यह स्थान हरिद्वार से लगभग 150 मील और ऋषिकेश से 132 मील (223 किलोमीटर) दूर है। हरिद्वार से ऋषिकेशतक रेल जाती है और मोटर – टैक्सी भी चलती रहती हैं। ऋषिकेश से गौरीकुण्डतक मोटर – बस जाती है, वहाँ से 14 कि. मी. पैदल जाना पड़ता है। पैदल यात्रा के अतिरिक्त कंडी या झप्पानसे, जिसे पहाड़ी कुली ढोते हैं, तथा घोड़े से जा सकते हैं। यात्रामार्ग में यात्रियों के सुविधार्थ बीच – बीच में चट्टियाँ बनी हुई हैं। यहाँ गरमी में भी सर्दी बहुत पड़ती है। कहीं – कहीं तो नदी का जलतक जम जाता है। श्रीकेदारेश्वर तीन दिशा में बर्फ से ढके रहते हैं और शीतलकाल में तो वहाँ रहना असम्भव – सा ही है। कार्तिकी पूर्णिमा के होते – होते पण्डेलोग केदारजी की पञ्चमुखी मूर्ति

1. सतयुग में उपमन्युजी ने तथा पाण्डवों ने द्वापर में यहाँ भगवान् शंकर की आराधना की थी। इन्द्र की भाँति पाण्डवों ने भी भगवान् शिव के महिषरूप का दर्शन किया था। इसका उल्लेख शिवपुराण में (को. रु. सं. अ. 19) आता है। यह केदारक्षेत्र अनादि है।

2. पाँचों केदार उत्तराखण्ड में ही अवस्थित हैं। ऊषीमठ (जो गुप्तकाशी से पाँच कि. मी. है) से लगभग 28 कि. मी. पर मदमहेश्वर तथा 23 कि. मी. पर तुङ्गनाथ है। हेलंग से 9 कि. मी. कल्पेश्वर है। इसी मार्ग में रुद्रनाथ भी आते हैं।

लेकर नीचे 'ऊखी मठ'[1] में चले आते हैं और फिर छः मास के बाद मेष-संक्रान्ति लगने पर बर्फ को काटकर रास्ता बनाकर पुनः जाकर मन्दिर के पट खोलते हैं।

गौरीकुण्ड से 14 कि. मी. कठिन चढ़ाई के बाद केदारनाथ पहुँचा जाता है। गौरीकुण्ड में दो कुण्ड हैं-एक गरम पानी का और एक ठंढे पानी का। शीतल जल का कुण्ड अमृतकुण्ड कहा जाता है। कहा जाता है पार्वती ने प्रथम स्नान इसी में किया था। गौरीकुण्ड का जल पर्याप्त गर्म है। पार्वती का जन्म यहीं हुआ था। यहाँ पार्वती तथा राधा-कृष्ण का मन्दिर है।

केदारनाथ का मन्दिर मन्दाकिनी के घाट पर पहाड़ी ढंग का बना हुआ है। भीतर घोर अन्धकार रहता है और दीपक के सहारे ही शङ्करजी के दर्शन होते हैं। दीपक में यात्री लोग घी डालते रहते हैं। शिवलिङ्ग अनगढ़ टीले के समान है। सम्मुख की ओर यात्री जल-पुष्पादि चढ़ाते हैं और दूसरी ओर भगवान् के शरीर में घी लगाते हैं तथा उनसे बाँह भरकर मिलते हैं; मूर्ति चार हाथ लंबी और डेढ़ हाथ मोटी है। मन्दिर के जगमोहन में द्रौपदीसहित पञ्चपाण्डवों की विशाल मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के पीछे कई कुण्ड हैं, जिनमें आचमन तथा तर्पण किया जाता है।

मन्दिर के समीप हंसकुण्ड है जहाँ पितरों की मुक्ति हेतु श्राद्ध-तर्पण आदि किया जाता है। मन्दिर के पीछे अमृतकुण्ड तथा कुछ दूर पर रेतसकुण्ड है। मन्दिर के दक्षिण भाग में छोटी पहाड़ी पर मुचकुण्ड भैरव हैं जहाँ से हिमालय का मनोहर दृश्य अत्यन्त नजदीक दिखाई पड़ता है। पास ही में बर्फानी जल की झील है, वहीं से मंदाकिनी नदी का उद्गम होता है। मन्दिर के पास ही उद्दककुण्ड है जिसकी विशेष महिमा है। केदारनाथजी के मुख्य मन्दिर में पूजा करके पिण्डी का आलिंगन करते हैं। रेतसकुण्ड के उत्तर में स्फटिकलिंग है जिसके पूर्व में 7 पद पर वह्नि तीर्थ है जहाँ बर्फ के बीच में तप्त-जल है। इसी स्थल पर भीमसेन ने मुक्ताओं से शंकरजी की पूजा की थी।

मधुगंगा और मंदाकिनी के संगम के पास क्रौंच तीर्थ है तथा क्षीरगंगा और मंदाकिनी के संगम पर ब्रह्मतीर्थ है। केदारपुरी से भीमशिलातक महादेवजी की शय्या है। इस केदारक्षेत्र में वर्षा काल में स्थल पर पाया जानेवाला कमल(ब्रह्मकमल) होता है। श्रावण मास में यात्री उन कमलों द्वारा ही शिवजी की पूजा करते हैं। केदारनाथ से कुछ दूर एक बड़ा भारी वासुकीताल है।

केदारपुरी के उत्तरी छोर पर श्रीकेदारनाथजी का मन्दिर है। मन्दिर के ऊपर 20 द्वार की चट्टी (हालनुमा कमरा) है। सबसे ऊपर सुनहरा कलश है। मन्दिर के ठीक मध्य में श्रीकेदारनाथजी की स्वयंभू मूर्ति है, उसी में भैंसे के पिछले धड़ की भी आकृति है। मन्दिर के आगे पत्थर का जगमोहन बना हुआ है। जगमोहन के बीच में पीतल का छोटा नन्दी और बाहर दक्षिण की ओर बड़ा नन्दी तथा छोटे-बड़े कई प्रकार के घंटे लगे हैं। द्वार के दोनों ओर दो द्वारपाल हैं तथा 10-15 अन्य देवमूर्तियाँ हैं। श्रीकेदारनाथजी कि शृंगार मूर्तियाँ पंचमुखी हैं, ये हर समय वस्त्राभूषणों से सुसज्जित रहती हैं। मन्दिर के पीछे दो-तीन

1. ऊखी या ऊषी मठ

हाथ लम्बा अमृतकुण्ड है जिसमें दो शिवलिंग स्थित हैं। पूर्वोत्तर भाग में जंघा टेककर आचमन के लिये जल बायें हाथ में लिये जाते हैं। यहीं पर ईशानेश्वर महादेव हैं। पश्चिम में एक सुबलककुण्ड है। केदार – मन्दिर के सामने एक अन्य छोटे मन्दिर में लम्बा उदककुण्ड है, इसमें भी रेतसकुण्ड की तरह आचमन किया जाता है। इस मन्दिर के पीछे मीठे पानी का एक और कुण्ड है जिसका जल भी पिया जाता है।

कार्तिक महीने में बर्फवृष्टि तेज होने पर केदारनाथ के मन्दिर में घी का नन्दादीप जलाकर श्रीकेदारेश्वरजी की चलमूर्ति बाहर निकाल कर मन्दिर के द्वार बंद कर दिये जाते हैं। कार्तिक से चैत्रतक श्रीकेदारजी का निवास नीचे ऊखी(या ऊषी) मठ में रहता है। वैशाख में जब बर्फ पिघल जाती है तब केदारधाम फिर से खोल दिया जाता है। जब इस मन्दिर के द्वार खोल दिये जाते हैं तब कार्तिक महीने में जलाया हुआ नंदादीप ज्यों का त्यों जलता हुआ नजर आता है। इस दिव्य ज्योति के दर्शन कर लेने पर शिवभक्त अपने आपको धन्य समझते हैं।

केदारनाथ के निकट 'भैरवझाँप' पर्वत है। पहले यहाँ कोई – कोई लोग बर्फ में गलकर अथवा ऊपर से कूदकर शरीरपात करते थे; पर 1829 से सती एवं भृगुपतन की प्रथाओं की भाँति सरकार ने इस प्रथा को भी बंद करा दिया।

(6) श्रीभीमशङ्कर

शिवपुराण में कहा गया है कि भीमशङ्कर के नाम का श्रवण करनेमात्र से मानव की इच्छायें पूरी हो जाती हैं। यह लिंग सर्वार्थसाधक तथा सभी विपत्तियों का निवारक है।

अतः परं प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भैमशंकरम्।
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वाभीष्टं लभेन्नरः।। (कोटिरु. सं. 20/1)
भीमशंकरनामा त्वं भविता सर्वसाधकः।
एतल्लिंगं सदा पूज्यं सर्वापद्विनिवारकम्।। (कोटिरु. सं. 21/53)

श्रीभीमशंकर का वास्तविक स्थान कहाँ है? इसपर विद्वानों में मतभेद है। ज्यादा प्रचलित भीमशंकर का स्थान बम्बई(मुम्बई) से पूर्व और पूना से उत्तर भीमा नदी के किनारे सह्यपर्वत के एक शिखर पर स्थित है। यह स्थान बस के रास्ते से नासिक से लगभग 190 किलोमीटर दूर है। मुम्बई, पुणे तथा तलेगाँव से राज्य परिवहन की बसें मिलती रहती हैं। पुणे से यह स्थान लगभग 65 किलोमीटर उत्तर की ओर है।

शिवपुराण की एक कथा के आधार पर भीमशंकर ज्योतिर्लिङ्ग आसाम के कामरूप जिले में गोहाटी के पास ब्रह्मपुर पहाड़ी पर स्थित बतलाया जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि उत्तरांचल प्रान्त के नैनीताल जिले के उज्जनक नामक स्थान में एक विशाल शिवमन्दिर है, वही भीमशंकर का स्थान है।

महाराष्ट्र के पुणे जिले के राजगुरुनगर(खेड) तहसील में घोड़ेगाँव के आगे विशाल सह्याद्रि

(पर्वत) का जो हिस्सा आता है, उसी हिस्से के एक ऊँचे स्थान पर यह परम पवित्र स्थान विराजमान है। सागर से यह लगभग 4000 फीट ऊँचा होगा। वहाँ के लोगों में यह प्रचलित है कि त्रिपुरासुर को मारने के लिये भगवान् शिव ने विशालरूप(भीमरूप) धारण किया था। त्रिपुरासुर को मारकर युद्ध के कारण थके होने के कारण शिवजी कुछ पल के लिये विश्राम हेतु सह्याद्रि के ऊँचे स्थान पर ठहरे। उस समय शिवजी के शरीर से अविरल पसीनें की धारायें बहने लगीं। वहीं पर उस समय अवध का सूर्यवंशीय राजा भीमक तप कर रहा था। शंकरजी ने प्रसन्न होकर उसे वहाँ पर दर्शन दिया। राजा ने शिवजी से प्रार्थना करते हुए कहा कि आप के पसीने की धारायें पावन नदी बन जायँ तो भक्तगण इस तीर्थ से पावन हो जायँगे। फलस्वरूप पसीने की उन धाराओं का प्रवाह एक कुण्ड में आकर भीमा नदी का रूप धारण कर बहने लगा। देवगण तथा भक्तों की प्रार्थन पर शिवजी ने अपना त्रिशूल यहीं रख दिया और ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में स्थित हो गये।

त्रिपुरासुर की मृत्यु के बाद उसकी शोकमग्न भार्यायें शाकिनी तथा डाकिनी शिवजी की शरण में आ गयीं और जीवनरक्षा की भीख माँगने लगीं। उनकी प्रार्थना सुनकर शिवजी ने उन्हें अभय देते हुए कहा–'आप लोग इस क्षेत्र में निर्भय होकर निवास कर सकती हैं। यह क्षेत्र आपका ही रहेगा। इतना ही नहीं, मेरा नाम जप करने से पहले आपके नाम का भक्त उच्चारण करते रहेंगे।'

ज्योतिर्लिङ्ग भीमशंकर से निकली भीमा नदी जब पंढरपुर में पहुँचती है तो वह चन्द्रभागा हो जाती है। क्योंकि वहाँ पर वह चन्द्रमा की तरह मुड़ जाती है। भीमशंकर की मुख्य मूर्ति से थोड़ा–थोड़ा जल झरता रहता है। मन्दिर के पास ही दो कुण्ड हैं जिन्हें नाना फडनवीस ने बनवाया था। मन्दिर के आसपास एक छोटी सी बस्ती है। इस मन्दिर में प्रतिदिन रुद्राभिषेक, पंचामृतस्नान आदि होते रहते हैं। सोमवार तथा अन्य दिनों में दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती है। शिवरात्रि के समय बड़ा मेला लगता है। अमावस, विशेषकर सोमवती अमावस, श्रावण तथा कार्तिक मास में यात्रियों का आगमन विशेष रहता है।

भीमशंकर से लगभग एक फर्लांग पहले ही शिखर पर देवीमन्दिर है। वहाँ से नीचे उतरने पर भीमशंकर मन्दिर मिलता है।

इस मन्दिर का शिल्प हेमाडपंती ढंग का है। इसमें दशावतार तथा ऋषि–मुनियों की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। शिवजी के मन्दिर के पास ही नन्दी का भी एक स्वतंत्र मन्दिर है। इसी मन्दिर के पास 500 किलो वजन का विशाल घण्टा है। इस घण्टे पर 1729 साल अंकित है। घंटानाद दूरतक गूँजता है। इस क्षेत्र में 108 तीर्थ विद्यमान हैं। उदाहरण के लिये ज्ञानतीर्थ, मोक्षतीर्थ, पापमोचनतीर्थ, व्याघ्रपादतीर्थ, गुप्त भीमेश्वर आदि।

छत्रपति शिवाजी महाराज, राजाराम महाराज, बालाजी विश्वनाथ पेशवा आदि–भीमशंकर के भक्त थे। श्रीरघुनाथ दादा पेशवा ने इसी क्षेत्र में बड़ा कुआँ खुदवाया था। पुणे के चिमणाजी अंतोजी

नाईक भिडे साहुकार ने ई० सन् 1737 में यहाँ के सभामंडप का निर्माण कराया। पेशवाओं के दीवान नाना फडनवीस ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार भी कराया था।

शिवपुराण की एक कथा के आधार पर भीमशङ्कर का ज्योतिर्लिङ्ग आसाम – प्रान्त के कामरूप जिले में पूर्वोत्तर रेलवे पर गोहाटी के पास ब्रह्मपुर पहाड़ी पर अवस्थित बतलाया जाता है। संक्षेप में इतिहास यों है कि कामरूप – देश में सुदक्षिण (कामरूपेश्वर) नामक एक महाप्रतापी शिव – भक्त राजा हो गये हैं। वे बराबर शिवजी के पार्थिवपूजन में तल्लीन रहते थे। उन्हीं दिनों वहाँ 'भीम' नामक एक महाराक्षस प्रकट हुआ और धर्मोपासकों को त्रास देने लगा। सुदक्षिण की शिव – भक्ति की ख्याति सुनकर वह वहाँ आ धमका और ध्यानावस्थित राजा को ललकार कर कराल कृपाण दिखलाते हुए बोला – 'रे दुष्ट! शीघ्र बतला कि क्या कर रहा है? अन्यथा तेरी खैर नहीं।' शिव – भक्त राजा ध्यान से नहीं डिगा, उसने मन – ही – मन भगवान् शङ्कर का स्मरण किया और निर्भीकतापूर्वक बोला –

भजामि शङ्करं देवं स्वभक्तपरिपालकम्।
चराचराणां सर्वेषामीश्वरं निर्विकारकम्।। (शिवपु. कोटिरु. सं. 21/16)

अर्थात् हे राक्षसराज! मैं भक्तों के प्रतिपालक तथा सभी चराचर के निर्विकार स्वामी भगवान् शङ्कर का भजन कर रहा हूँ।

इस पर राक्षस शिवजी की निन्दा करके राजा को उनकी पूजा करने से मना करने लगा और उनके किसी प्रकार न मानने पर उसने उनपर अपनी लपलपाती हुई तीखी तलवार का वार किया; पर तलवार पार्थिव – लिङ्ग पर पड़ी और तत्क्षण भगवान् शङ्कर ने उसमें से प्रकट होकर उसका प्राणान्त कर दिया। सर्वत्र आनन्द छा गया। देव तथा ऋषिगण शिव से वहीं निवास करने के लिये प्रार्थना करने लगे, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

इत्येवं प्रार्थितः शम्भुर्लोकानां हितकारकः।
तत्रैवास्थितवान् प्रीत्या स्वतन्त्रो भक्तवत्सलः।।

(शिवपु. कोटिरु. सं. अ. 21 श्लो. 54)

बस, तभी से इस ज्योतिर्लिङ्ग का नाम भीमशङ्कर पड़ा।

कुछ लोग उत्तरांचल के नैनीताल जिले में काशीपुर या गोविष्ण नामक प्रख्यात नगर से ठीक पूर्व दिशा में लगभग 2 किलोमीट की दूरी पर स्थित उज्जनक नामक स्थान पर स्थित विशाल शिवमन्दिर में भीमशंकर ज्योतिर्लिङ्ग को स्थित मानते हैं। इसके लिये निम्न तर्क दिये जाते हैं।

शिवपुराण में भीमशंकर – ज्योतिर्लिङ्ग का स्थान कामरूप – देश बतलाया गया है। प्रचीन ग्रन्थों में उज्जनक देश को कामरूप कहते थे। पीछे महाभारत के समय से यह देश डाकिनी – देश कहलाने लगा। कालिदास ने भी अपने 'रघुवंश' में उत्तर दिशा में ही इसका अस्तित्व बतलाया है। अतः यह बात सिद्ध होती है कि यही देश कामरूप देश है। यह देश डाकिनी – देश क्यों कहलाया, इसका कारण

यह है कि सहारनपुर से लेकर नेपालतक का जो हिमालय का वन है उसमें डाकिनी योनि में उत्पन्न हिडिम्बा नामक राक्षसी रहती थी जिसका विवाह भीम से हुआ था। वास्तव में वह डाकिनी थी किन्तु वह राक्षसीरूप में रहती थी। इसलिये उसे राक्षसी कहते हैं। महाभारत के वनपर्व में इसका खुलासा किया गया है।

उज्जनक के शिवमन्दिर में स्थित मूर्ति इतनी स्थूल है कि एक मनुष्य उसका आलिंगन नहीं कर सकता। इस प्रान्त में इस शैली का न तो दूसरा मन्दिर है और न ही इतना स्थूल शिवलिंग ही। यह मूर्ति दूसरी मंजिलतक है। मन्दिर के अन्दर के पश्चिमी भाग में खुदे हुए दो प्राचीन लेखों से पता चलता है कि यह मन्दिर सन् 302 ई० का बना हुआ है। इसका गुम्बज बताशे के आकार का मालूम पड़ता है। मन्दिर के पूर्वभाग में भैरवनाथ का मन्दिर है तथा मन्दिर के बाहर सामने ही एक कुण्ड है जो शिवगंगा के नाम से पुकारा जाता है। कुण्ड के सामने कोसी नदी की एक नहर और उसके भी पूर्व में बहुला नामक नदी है।

मन्दिर के चारों तरफ एक सौ आठ रुद्र हैं जो इसके चारों तरफ के बहुत से टीलों को खुदवाने से मिले हैं। इन 108 रुद्रों में हरिशंकर और नागेश्वर प्रसिद्ध हैं जो इस मन्दिर के क्रमशः आग्नेय और दक्षिण दिशा में विद्यमान हैं। इस मन्दिर की मूर्ति अति मोटी होने के कारण लोग इसे 'मोटेश्वरनाथ' कहने लगे।

(7) श्रीविश्वेश्वर

यह ज्योतिर्लिङ्ग वाराणसी (बनारस) या काशी में विराजमान है। इस पवित्र नगरी की बड़ी महिमा है। कहते हैं प्रलयकाल में भी इसका लोप नहीं होता। उस समय भगवान् शङ्कर इसे अपने त्रिशूल पर धारण कर लेते हैं और सृष्टिकाल आने पर इसे नीचे उतार देते हैं। यही नहीं, आदि सृष्टि-स्थली भी यही भूमि बतलायी जाती है। इसी स्थान पर भगवान् विष्णु ने सृष्टि उत्पन्न करने की कामना से तपस्या करके आशुतोष को प्रसन्न किया था और फिर उनके शयन करने पर उनके नाभि-कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जिन्होंने सारे संसार की रचना की। अगस्त्यमुनि ने भी विश्वेश्वर की बड़ी आराधना की थी और इन्हीं की अर्चा से श्रीवसिष्ठजी तीनों लोकों में पूजित हुए तथा राजर्षि विश्वामित्र ब्रह्मर्षि कहलाये। सर्वतीर्थमयी एवं सर्वसंतापहारिणी मोक्षदायिनी काशी की महिमा ऐसी है कि यहाँ प्राणत्याग करने से ही मुक्ति मिल जाती है। भगवान् भोलानाथ मरते हुए प्राणी के कान में तारक-मन्त्र का उपदेश करते हैं, जिससे वह आवागमन से छूट जाता है, चाहे मृत प्राणी कोई भी क्यों न हो –

विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः।
इह क्षेत्रे मृतः सोऽपि संसारे न पुनर्भवेत्।। (शिवांक पृ. 555)

'विषयासक्त, अधर्मनिरत व्यक्ति भी यदि इस काशीक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त हो तो उसे भी पुनः संसार-बन्धन में नहीं आना पड़ता।' आये कैसे? शिवजी के द्वारा दिये हुए तारक-मन्त्र के उपदेश

से अन्तकाल में उसका अन्त:करण शुद्ध हो जाता है और वह मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

काशीके माहात्म्यके सम्बन्ध में स्कन्दपुराण कहता है–

भूमिष्ठापि न यात्र भूस्त्रिदिवतोऽप्युच्चैरध:स्थापि या
या बद्धा भुवि मुक्तिदा स्युरमृतं यस्यां मृता जन्तव:।
या नित्यं त्रिजगत्पवित्रतटिनी तीरे सुरै: सेव्यते
सा काशी त्रिपुरारिराजनगरी पायादपायाज्जगत्।। (स्कंदपु. काशीख. पूर्वा. 1/2)

'जो पृथ्वी पर होने पर भी पृथ्वी से सम्बद्ध नहीं है (साधारण पृथ्वी नहीं है–तीन लोक से न्यारी है), जो अध: स्थित (नीची होनेपर भी) स्वर्गादि लोकों से भी अधिक प्रतिष्ठित एवं उच्चतर है, जो जागतिक सीमाओं से आबद्ध होने पर भी सभी का बन्धन काटनेवाली मोक्षदायिनी है, जो सदा त्रिलोकपावनी भगवती भागीरथी के तटपर सुशोभित तथा देवताओं से सुसेवित है, वह त्रिपुरारि भगवान् विश्वनाथ की राजनगरी सम्पूर्ण जगत् को नष्ट होने से बचाये।'

नारदपुराण कहता है–

वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता
रम्या नृणां सुगतिदा किल सेव्यमाना।
अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि
पापक्षये विरजस: सुमन:प्रकाशा:।। (ना. पु. उ. 48/13 तीर्थांक पृ. 127 से)

'काशी परम रम्य ही नहीं, त्रिलोकी का सार है। वह सेवन किये जानेपर मनुष्योंको सद्गति प्रदान करती है। अनेक पापाचारी भी यहाँ आकर पापमुक्त होकर देववत प्रकाशित होने लगते हैं।'

कहा जाता है कि अवन्तिका आदि सात मोक्षपुरियाँ हैं, पर वे कालान्तर में काशीप्राप्ति कराके ही मोक्ष प्रदान करती हैं। काशी ही एक पुरी है जो साक्षात् मोक्ष देती है–

अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तिकराणि च।
काशीं प्राप्यापि मुच्येत नान्यथा तीर्थकोटिभि:।।

(स्कंदपु. काशीख. तीर्थांक पृ. 127 से)

'काशीखण्ड' का कहना है कि 'मै कब काशी जाऊँगा, कब शङ्करजी का दर्शन करूँगा' इस प्रकार जो सोचता तथा कहता है, उसे सर्वदा काशीवास का फल होता है–

कदा काश्यां गमिष्यामि कदा द्रक्ष्यामि शङ्करम्।
इति ब्रुवाण: सततं काशीवासफलं लभेत्।। (तीर्थांक पृ. 127)

जिनके हृदय में काशी सदा विराजमान है, उन्हें संसार–सर्प के विष से क्या भय?

येषां हृदि सदैवास्ते काशी त्वाशीविषाङ्गद:।

संसाराशीविषविषं न तेषां प्रभवेत् क्वचित्।।

(स्कंद पु. काशीख. उत्तरार्ध 64/30)

जिसने काशी-यह दो अक्षरों का अमृत कानों से पान कर लिया, उसे गर्भजनित व्यथाकथा नहीं सुननी पड़ती -

श्रुतं कर्णामृतं येन काशीत्यक्षरयुग्मकम्।
न समाकर्णयत्येव स पुनर्गर्भजां कथाम्।। (काशीखं. उत्तरार्ध 64/33)

जो दूर से भी काशी-काशी सदा जपता रहता है, वह अन्यत्र रहकर भी मोक्ष प्राप्त कर लेता है-

काशी काशीति काशीति जपतो यस्य संस्थितिः।
अन्यत्रापि सतस्तस्य पुरो मुक्तिः प्रकाशते।। (काशीखं. अध्याय 64/38)

काशी की महिमा के बारे में रामचरितमानस में कहा गया है कि-

मुक्ति जन्म महि जानि, ग्यान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि, सो काशी सेइअ कस न।।

(रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड, सोरठा)

काशी के विभिन्न क्षेत्रों में किये गये स्नान, दान, जप, तप, अध्ययनादि की अनन्त महिमा है। काशी-माहात्म्य के सम्बन्ध में अधिक जानने के लिये स्कन्दपुराण-काशीखण्ड, अध्याय 1 से 100; नारदपुराण उ. भा. अ. 48 से 53; अ. 29; अग्निपुराण अ. 112; शिवपुराण, शतरु. अ. 2; पद्मपुराण, पूना, आनन्दाश्रमसं., आदिख. 32 से 37 अध्यायतक; वेङ्कटेश्वर सं., स्वर्गख. 32 से 37 तक, उत्तरख. अध्याय 23; भविष्यपु. उ. 130 आदि स्थलों को देखना चाहिये।

इसे बनारस या वाराणसी भी कहा जाता है। कहा जाता है कि यह पुरी भगवान् शङ्कर के त्रिशूल पर बसी है और प्रलय में भी इसका नाश नहीं होता। वरणा और असि नामक नदियों के बीच बसी होने से इसे वाराणसी कहते हैं। जहाँ देह त्यागने से प्राणी मुक्त हो जाय, वह अविमुक्त क्षेत्र यही है। यहाँ देहत्याग के समय भगवान् शङ्कर मरणोन्मुख प्राणी को तारकमन्त्र सुनाते हैं और उससे जीव को तत्त्वज्ञान हो जाता है, उसके सामने अपना ब्रह्मस्वरूप प्रकाशित हो जाता है। इस प्रकार 'जहाँ ब्रह्मप्रकाशित हो, वह काशी' यह काशी नाम का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है।

अयोध्या, मथुरा, माया (कनखल-हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका (उज्जैन) तथा द्वारिका-ये सात पुरियाँ हैं। इनमें भी काशी मुख्य मानी गयी है। **'काश्यां हि मरणान्मुक्तिः'**, काशी में कैसा भी प्राणी मरे, वह मुक्त हो जाता है- यह शास्त्र की घोषणा है और इस पर आस्था रखते हुए सहस्त्रों वर्ष से देश के कोने-कोने से लोग देहोत्सर्ग के लिये काशी आते रहे हैं। बहुत से लोग तो मरने के लिए काशी में ही निवास करते हैं। वे काशी से बाहर जाते ही नहीं।

काशी भारत का प्राचीनतम विद्याकेन्द्र और सांस्कृतिक नगर है। यह शहर भारत के सभी प्रमुख नगरों से रेल एवं हवाई मार्ग से जुड़ा है। यह किसी एक प्रान्त, एक सम्प्रदाय या एक समाज का नगर नहीं है। भारत के सभी प्रान्तों के निवासियों के यहाँ मुहल्ले हैं। कश्मीर से कन्याकुमारी और आसाम-भूटान से कच्छतक के लोग यहाँ स्थायी रूप से बसे हैं। भगवान् विश्वनाथ की इस पुरी में सभी सम्प्रदाय के लोग रहते हैं, उनकी संस्थाएँ हैं और उपासना स्थान हैं। संस्कृत-विद्या का तो यह सदा से सम्मान्य केन्द्र रहा है। धार्मिक व्यवस्था में पूरे देश के लिये काशी के विद्वानों का निर्णय सदा शिरोधार्य रहा है और काशी के विद्वान् कौन? वे काशी के विद्वान्, जो काशी में रहें। उनका और उनके पूर्व पुरुषों का जन्म कहाँ किस प्रान्त में हुआ, इससे कोई विवाद नहीं; क्योंकि काशी तो पूरे भारत की नगरी है। भगवान् विश्वनाथ की पुरी में प्रान्तीयता या और किसी संकीर्णता को स्थान कैसे हो सकता है?

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में भगवान् शङ्कर का विश्वनाथ नामक ज्योतिर्लिङ्ग काशी में है और 51 शक्तिपीठों में से एक शक्तिपीठ (मणिकर्णिका पर विशालाक्षी) काशी में है। यहाँ सती का दाहिना कर्णकुण्डल गिरा था। इनके भैरव कालभैरव हैं। पुराणों में काशी की अपार महिमा है। भगवती भागीरथी के बायें तट पर यह नगर अर्धचन्द्राकार बसा है। यहाँ गंगा उत्तरवाहिनी है। इसे मन्दिरों का नगर कहा जाता है; क्योंकि यहाँ गली-गली में अनेकों मन्दिर हैं। उन सब मन्दिरों की नामावली भी दे पाना कठिन है। **'ग्रहणेषु काशी मकरे प्रयागः'** के अनुसार चन्द्रग्रहण के समय काशी में स्नानार्थियों की बहुत भीड़ होती है। शास्त्रों में काशी की सीमा इस प्रकार वर्णित है।

द्वियोजनमथार्द्धं च पूर्वपश्चिमतः स्थितम् ।
अर्द्धयोजनविस्तीर्णं दक्षिणोत्तरतः स्मृतम् ।।
वरणासिर्नदी यावदसिः शुष्कनदी शुभे ।
एष क्षेत्रस्य विस्तारः प्रोक्तो देवेन शम्भुना ।।
अयनं तूत्तरं ज्ञेयं तिमिचण्डेश्वरं ततः ।
दक्षिणं शङ्कुकर्णं तु ॐकारे तदनन्तरम् ।।

(ना. पु. उ. 48/19-20; अग्निपु. 112/6 तीर्थांक पृ. 126 से)

अर्थात् काशी पूर्व-पश्चिम ढाई योजन (दस कोस) लंबी तथा दक्षिणोत्तर आधे योजन (दो कोस) चौड़ी है। भगवान् शङ्कर ने इसका विस्तार वरणा से शुष्क नदी असीतक बतलाया है। इसके उत्तर में अयन तथा तिमिचण्डेश्वर एवं दक्षिण में शङ्कुकर्ण एवं ॐकारेश्वर है।

मार्ग

प्रसिद्ध ग्रांडट्रंक रोड पर काशी अवस्थित है। सड़क के मार्ग से यहाँ से एक ओर पटना-कलकत्ता,

दूसरी ओर लखनऊ, दिल्ली या प्रयाग जाया जा सकता है। पूर्वोत्तर रेलवे और उत्तरी रेलवे का यहाँ जंकशन स्टेशन है वाराणसी। यही यहाँ का मुख्य स्टेशन है। पूर्वोत्तर रेलवे से आनेवाले बनारस सिटी और उत्तरी रेलवे से आनेवाले काशी स्टेशन पर भी उतरते हैं।

काशी स्टेशन के पास ही गंगाजी पर राजघाट का पुल है। इस स्टेशन से गंगाजी केवल सौ गज होंगी। किंतु तीर्थ-यात्री प्रायः मणिकर्णिकाघाट या दशाश्वमेधघाट पर स्नान करते हैं। वाराणसी से दशाश्वमेधघाट लगभग 3 मील और मणिकर्णिकाघाट भी लगभग उतना ही दूर है। काशी स्टेशन से मणिकर्णिकाघाट 3 मील और दशाश्वमेधघाट (3½) मील दूर हैं। बनारस सिटी स्टेशन से घाटों की दूरी बनारस छावनी स्टेशन की अपेक्षा आध मील कम हो जाती है।

मणिकर्णिकाघाट या दशाश्वमेधघाट कहीं स्नान किया जाय, वहाँ से श्रीविश्वनाथजी तथा अन्नपूर्णाजी के मन्दिर दो फर्लांग से अधिक दूर नहीं हैं। यह दूरी गलियो में होकर पार करनी पड़ती है, अतः घाट से मन्दिर पैदल ही जाना पड़ता है।

काशी नगर में सरकारी बसें चलती हैं और सब कहीं रिक्शे-ताँगे, आटो रिक्शे आदि किराये पर पर्याप्त मिलते हैं। स्टेशनों पर टैक्सी एवं मोटरें भी मिलती हैं।

काशी के घाट

काशी अपने घाटों के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ गंगा के किनारे बहुत से घाट बने हैं। यात्री प्रायः नाव द्वारा बनारस के घाटों का दर्शन करते हैं। क्योंकि नाव से घाटों का दृश्य बड़ा अच्छा लगता है।

काशी के घाटों में पाँच घाट मुख्य माने जाते हैं-1-वरणा- सङ्गमघाट, 2-पञ्चगङ्गाघाट, 3-मणिकर्णिकाघाट, 4-दशाश्वमेधघाट, 5-असीसंगमघाट। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से घाट हैं। घाटों की कुल संख्या 50-60 के लगभग है। उनमें से मुख्य घाटों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है-

1. **वरणासंगमघाट-** पश्चिम से आकर वरणा नाम की छोटी नदी यहाँ गंगाजी में मिलती है। यहाँ भाद्रशुक्ल 12 तथा महावारुणीपर्व को मेला लगता है। संगम से पहले वरणानदी के बायें किनारे वशिष्ठेश्वर तथा ऋतीश्वर नाम के शिवमन्दिर हैं। वरणासंगम के पास विष्णुपादोदक-तीर्थ तथा श्वेतद्वीप-तीर्थ हैं। घाट की सीढ़ियों के ऊपर भगवान् आदि-केशव का मन्दिर है। इस मन्दिर में भगवान् केशव की चतुर्भुज श्याम रंग की खड़ी मूर्ति है। यहाँ दीवाल में केशवादित्य शिव हैं। पास ही हरिहरेश्वर-शिवमन्दिर है। इससे थोड़ी दूरी पर वेदेश्वर, नक्षत्रेश्वर तथा श्वेतद्वीपेश्वर महादेव हैं। काशी स्टेशन से वरणासंगमघाट डेढ़ मील है।

2. **पञ्चगङ्गाघाट-** कहा जाता है कि यहाँ यमुना, सरस्वती, किरणा और धूतपापा नदियाँ गुप्तरूप से गङ्गाजी में मिलती हैं; इसी से इस घाट का नाम पञ्चगङ्गा है। यहाँ विष्णुकाञ्चीतीर्थ तथा बिन्दुतीर्थ हैं। घाट के ऊपर बहुत से मन्दिर हैं। एक मन्दिर है बिन्दुमाधवजी का। अग्निबिन्दु नामक

ब्राह्मण को भगवान् नारायण ने वरदान दिया था– 'मैं यहाँ रहूँगा।' इससे उनका नाम यहाँ बिन्दुमाधव पड़ा। पास ही पञ्चगङ्गेश्वर महादेव का मन्दिर है। इस घाट के पास ही माधवराम का धरहरा है। पुराना बिन्दुमाधव–मन्दिर तोड़कर औरंगजेब ने मस्जिद बनवा दी थी, उस मस्जिद के पीछे द्वारिका–धीश तथा राधाकृष्ण के मन्दिर हैं। पञ्चगङ्गा घाट पर कार्तिकस्नान का महत्त्व है।

3. लक्ष्मण–बालाघाट– इस घाट के ऊपर लक्ष्मण–बालाजी अथवा वेङ्कटेश भगवान् का मन्दिर है। पास गर्भस्तीश्वर महादेव का छोटा मन्दिर है तथा समीप के एक मकान में मङ्गलगौरी–देवीश्वर–मूर्ति है। यहाँ मयूखादित्य तथा मित्रविनायक के मन्दिर भी हैं।

4. संकठाघाट– इसे यमतीर्थ कहा जाता है। यहाँ यमेश्वर तथा यमादित्य नाम के दो शिवमन्दिर हैं। यमद्वितीया को यहाँ मेला लगता है। घाट पर संकठादेवी का मन्दिर है। इस मन्दिर के बाहर कृष्णेश्वर और याज्ञवल्क्येश्वर महादेव हैं। एक हरिश्चन्द्रेश्वर–मन्दिर है। उससे थोड़ी दूर पर वसिष्ठेश्वर, वामदेवेश्वर तथा अरुन्धतीदेवी एक मन्दिर में हैं। उस मन्दिर के द्वार पर चिन्तामणि नामक विनायक मूर्ति है। उससे थोड़ी दूर सेना विनायक हैं। विन्ध्यवासिनीदेवी का मन्दिर भी यहाँ संकठादेवी–मन्दिर के बाहर है।

5. सिंधियाघाट– इस घाट पर आत्मवीरेश्वर–मन्दिर है। मन्दिर में दुर्गाजी, मङ्गलेश्वर महादेव, मङ्गलविनायक तथा अन्य देवताओं की मूतियाँ हैं। गली की दूसरी ओर बृहस्पतीश्वर, पार्वतीश्वर आदि मूतियाँ हैं; एक मन्दिर में सिद्धेश्वरीदेवी तथा सिद्धेश्वर, कलियुगेश्वर और चन्द्रेश्वर नामक लिङ्ग हैं, चन्द्रकूप है। ब्रह्मपुरी में विद्येश्वर महादेव हैं। यह घाट ग्वालियर के प्रसिद्ध सिंधिया नरेशों का बनवाया हुआ है।

6. मणिकर्णिकाघाट– इस घाट को वीरतीर्थ भी कहते हैं, इस घाट के ऊपर मणिकर्णिका–कुण्ड है, जिसमें चारों ओर सीढ़ियाँ हैं। 21 सीढी नीचे जल है। इस कुण्ड की तह में एक भैरवकुण्ड है। इस कुण्ड का पानी प्रति आठवें दिन निकाल दिया जाता है और एक छिद्र से स्वच्छ जलधारा अपने आप निकलती है, जिससे कुण्ड भर जाता है। पास ही तारकेश्वर शिव–मन्दिर तथा दूसरे मन्दिर हैं। यहाँ वीरेश्वर–मन्दिर है। वीरतीर्थ में स्नान करके लोग वीरेश्वर की पूजा करते हैं।

7. चिताघाट– मणिकर्णिका के दक्षिण–पश्चिम यह काशी का श्मशान–घाट है।

8. मीरघाट – यहाँ विशाल–तीर्थ है। घाट पर धर्मकूप नामक कुआँ है, जिसके पास विश्वबाहुदेवी का मन्दिर है। इसमें दिवोदासेश्वर शिवलिङ्ग है। कूप से दक्षिण धर्मेश्वर मन्दिर है। उसके पास ही विशालाक्षी नामक पार्वती–मन्दिर है। घाट के पास आशाविनायक तथा हनुमान्जी की बड़ी मूर्ति है। पास के मकान में वद्धादित्य की तथा एक गली में आनन्दभैरव–की मूर्ति है।

9. मानमन्दिरघाट– यहाँ दाल्भ्येश्वर, सोमेश्वर, सेतुबन्ध रामेश्वर और स्थूलदन्त विनायक की मूर्तियाँ हैं। लक्ष्मीनारायण–मन्दिर और वाराही देवी का मन्दिर भी है। जयपुर के राजा मानसिंह का

बनवाया हुआ प्रसिद्ध मानमन्दिर यहीं है, जिसकी छत के ऊपर उन्हीं की बनवायी हुई एक वेधशाला है, जिसमें नक्षत्रों और ग्रहों के निरीक्षण के सात यन्त्र जीर्ण दशा में हैं।

10. दशाश्वमेधघाट – यह जान लेना चाहिये कि वरणा–संगमघाट से यह घाट लगभग 3 मील और राजघाट से(1½) मील है। कहा जाता है कि बह्माजी ने यहाँ दस अश्वमेध यज्ञ किये थे। काशी का यह मुख्य एवं प्रशस्त घाट है। यहाँ बहुत स्नानार्थी आते हैं। यहाँ जल के भीतर रुद्र–सरोवर तीर्थ है। घाट पर दशाश्वमेधेश्वर शिवजी हैं तथा शीतलादेवी की मूर्ति है। एक मन्दिर में गङ्गा, सरस्वती, यमुना, ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं नृसिंहजी की मनुष्य बराबर मूर्तियाँ हैं। घाट के उत्तर विशाल शिवमन्दिर है। उसके उत्तर शूलटङ्केश्वर–शिवमन्दिर है, जिसमें अभयविनायक हैं। घाट पर प्रयागेश्वर, प्रयागमाधव तथा आदिवाराहेश्वर के मन्दिर हैं। ज्येष्ठशुक्ला 10–गङ्गादशहरा को इस घाट पर स्नान का अधिक माहात्म्य है। इस घाट से थोड़ी दूर पर बालमुकुन्द–मन्दिर है। उसके समीप ब्रह्मेश्वर तथा सिद्धतुण्ड गणेश हैं।

11. चौसट्ठीघाट – इस घाट पर चौसठ योगिनियों की मूर्ति है। पास ही मण्डप में भद्रकाली–मूर्ति है। घाट से थोड़ी दूर पर पुष्पदन्तेश्वर, गरुड़ेश्वर तथा पातालेश्वर महादेव हैं। पुष्पदन्तेश्वर–मन्दिर में एकदन्तविनायक–मूर्ति है। इसके पश्चात् पाण्डेघाट, सर्वेश्वरघाट और राजघाट हैं।

12. केदारघाट – इसके ऊपर गौरीकुण्ड है, जिसके पार केदारेश्वर–मन्दिर है। इस मन्दिर में पार्वती, स्वामिकार्तिक, गणपति, दण्डपाणि भैरव, नन्दी आदि अनेक मूर्तियाँ हैं। यहाँ लक्ष्मीनारायण –मन्दिर तथा मीनाक्षीदेवी का मन्दिर भी है। केदारेश्वर–मन्दिर के बाहर नीलकण्ठेश्वर–मन्दिर है, जिसके सम्मुख संगमेश्वर शिव हैं। यहाँ से थोड़ी दूर तिलभाण्डेश्वर–मन्दिर है।

13. तुलसीघाट – घाट के ऊपर गङ्गासागरकुण्ड है। इसी घाट पर गोस्वामी तुलसीदासजी बहुत दिन रहे और यहीं संवत् 1680 में उन्होंने देह छोड़ा। यहाँ उनके द्वारा स्थापित हनुमान्जी की मूर्ति है। इस मन्दिर में तुलसीदासजी की चरण–पादुका तथा अन्य कई स्मारक सुरक्षित हैं। इस मन्दिर में भगवान् कपिल की मूर्ति भी है। तुलसीघाट से थोड़ी दूर पर लोलार्ककुण्ड है। यह एक कुआँ है, जिसमें एक पास के हौज में होकर नीचेतक जाने का मार्ग है। कुण्ड की सीढ़ियों के ऊपर लोलादित्य तथा लोलार्केश्वर शिव–मूतियाँ हैं। पास ही अमरेश्वर एवं परेश्वरेश्वर शिव–मन्दिर हैं। इसके समीप ही अर्कविनायक हैं।

14. असि–संगमघाट – यह घाट कच्चा है। यहाँ असि नामक नदी गङ्गाजी में मिलती है। इस घाट के ऊपर जैनमिन्दर है। यहाँ हरिद्वार–तीर्थ माना जाता है। कार्तिककृष्णा 6 को यहाँ स्नान का विशेष महत्त्व है। यह घाट दशाश्वमेधघाट से लगभग 2 मील है।

काशी के मन्दिर एवं कुण्ड

1. श्रीविश्वनाथजी – काशी का सर्वप्रधान मन्दिर यही है। काशी में उत्तर की ओर ॐकारखण्ड,

दक्षिण में केदारखण्ड और बीच में विश्वेश्वरखण्ड है, जहाँ बाबा विश्वनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर है। कहा जाता है इस मन्दिर की स्थापना अथवा पुनः स्थापना आद्यशंकराचार्य ने स्वयं अपने कर-कमलों से की थी। मुस्लिम शासकों ने 1033 से 1669 ई० तक काशी का कई बार विध्वंस किया। मन्दिरों को गिराकर उन स्थानों पर मस्जिदें खड़ी कर दीं। वर्तमान विश्वनाथ मन्दिर प्राचीन मन्दिर के पीछे से थोड़ा हटकर अहिल्याबाई ने 1777 ई० में बनवाया। 1785 ई० में काशीराज मन्साराम और उनके सुपुत्र बलवंत सिंह ने विश्वनाथ मन्दिर के परिसर में अन्य कई मन्दिर बनवाये। मन्दिर पर जो स्वर्णकलश चढ़ा है, उसे इतिहास-प्रसिद्ध पंजाब केसरी महाराज रणजीत सिंह ने अर्पित किया था। इस मन्दिर के सम्मुख सभा-मण्डप है और मण्डप में पश्चिम दण्डपाणीश्वर-मन्दिर है। सभा-मण्डप में एक बड़ा घण्टा (जिसे नेपाल के राजा ने भेट किया था) तथा अनेक देवमूर्तियाँ हैं। मन्दिर के प्राङ्गण के एक ओर सौभाग्यगौरी तथा गणेशजी और दूसरी ओर शृङ्गारगौरी, अविमुक्तेश्वर तथा सत्यनारायण के मन्दिर हैं। दण्डपाणीश्वर-मन्दिर के पश्चिम शनैश्चरेश्वर महादेव हैं।

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में यह विश्वेश्वर-लिङ्ग सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसकी कुछ विशेषताएँ हैं। यहाँ जलहरी शङ्कु के आकार की नहीं, चौरस है। उसमें से जल निकलने का मार्ग नहीं है। जल लोटे से उलीच कर निकाला जाता है। कार्तिकशुक्ला 14 तथा महाशिवरात्रि को विश्वेश्वर का अर्चन महान् फलदायी है।

श्रीविश्वनाथजी काशी के सम्राट् हैं। उनके मन्त्री हरेश्वर, कथावाचक ब्रह्मेश्वर, कोतवाल भैरव, धनाध्यक्ष तारकेश्वर, चोबदार दण्डपाणि, भंडारी वीरेश्वर, अधिकारी ढुण्ढिराज तथा काशी के अन्य शिवलिङ्ग प्रजापालक हैं।

विश्वनाथ-मन्दिर के वायव्यकोण में लगभग डेढ़ सौ शिवलिङ्ग हैं। इनमें धर्मराजेश्वर मुख्य हैं। इस मण्डली को शिव की कचहरी कहते हैं। यहाँ मोद-विनायक, प्रमोद-विनायक, सुमुख-विनायक और गणनाथ-विनायक की मूर्तियाँ हैं।

2. ज्ञानवापी – श्रीविश्वनाथ-मन्दिर के पास ही ज्ञानवापी कूप है। कहा जाता है कि औरंगजेब ने जब विश्वनाथ मन्दिर तुड़वाया, तब श्रीविश्वनाथजी इस कूप में चले गये। पीछे उन्हें वहाँ से निकालकर वर्तमान मन्दिर में स्थापित किया गया। इस कूप के जल से यात्री आचमन करते हैं।

यहीं पर 7 फुट ऊँचा नन्दी है, जो प्राचीन विश्वनाथ-मन्दिर की ओर मुख करके स्थित है। यहाँ प्राचीन मन्दिर के स्थान पर औरंगजेब ने मस्जिद बनवा दी; किंतु उसमें मन्दिर के चिन्ह अभीतक देखे जाते हैं। मस्जिद के बाहर एक छोटे चबूतरे पर बहुत छोटे मन्दिर में गौरीशंकर-मूर्ति है।

3. अक्षयवट – श्रीविश्वनाथ-मन्दिर के द्वार से निकलकर ढुण्ढिराज गणेश की ओर चलें तो प्रथम बायीं ओर शनैश्चर का-मन्दिर मिलता है। इनका मुख चाँदी का है, शरीर नहीं है। नीचे केवल कपड़ा पहनाया होता है। पास में एक ओर महावीरजी हैं। एक कोने में एक वटवृक्ष है, जिसे अक्षयवट

कहते हैं। यहाँ द्रुपदादित्य तथा नकुलेश्वर महादेव हैं।

4. अन्नपूर्णा – विश्वनाथ-मन्दिर से थोड़ी दूर पर ही यह मन्दिर है। चाँदी के सिंहासन पर अन्नपूर्णा की पीतल की मूर्ति विराजमान है। मन्दिर के सभामण्डप के पूर्व कुबेर, सूर्य, गणेश, विष्णु तथा हनुमान्‌जी की मूर्तियाँ तथा आचार्य श्रीभास्करराय द्वारा स्थापित यन्त्रेश्वर लिङ्ग है, जिसपर श्रीयन्त्र खुदा हुआ है। इस मन्दिर के साथ लगा एक खण्ड और है, जिसका आँगन विस्तृत है। उसमें महाकाली, शिवपरिवार, गङ्गावतरण, लक्ष्मीनारायण, श्रीरामदरबार, राधाकृष्ण, उमामहेश्वर एवं अन्त में नृसिंहजी की संगमरमर की सुन्दर मूर्तियाँ हैं। चैत्र शु. 9 तथा आश्विन शु. 8 को अन्नपूर्णा के दर्शन-पूजन की विशेष महिमा है।

5. ढुण्ढिराज गणेश – अन्नपूर्णा-मन्दिर के पश्चिम गली के पास ढुण्ढिराज गणेश हैं। इनके प्रत्येक अङ्गपर चाँदी मढ़ी है। कहा जाता है कि महाराज दिवोदास ने गण्डकी के पाषाण से यह मूर्ति बनवायी थी। माघ शुक्ल 4 को इनके पूजन का अधिक महत्त्व है।

6. दण्डपाणि – ढुण्ढिराज के समीप उत्तर की ओर एक छोटे मन्दिर में दण्डपाणि की मूर्ति है। उनके दोनों ओर उनके दो गण हैं-शुभ्रं और विभ्रं।

7. आदिविश्वेश्वर – ज्ञानवापी के पास प्राचीन विश्वनाथ-मन्दिर तोड़कर औरंगजेब ने मस्जिद बनवा दी है। उसके पश्चिमोत्तर सड़क के पास आदि विश्वेश्वर का मन्दिर है।

8. लाङ्गलीश्वर – आदिविश्वेश्वर के समीप पाँच पाण्डवों से आगे एक मन्दिर में लाङ्गलीश्वर नामक विशाल शिवलिङ्ग है। आदिविश्वेश्वर के आगे सड़क पर सत्यनारायणजी का भव्य मन्दिर है।

9. काशी – करवत – औरंगजेबवाली उक्त मस्जिद के पास एक गली में यह स्थान है। एक अँधेरे कुएँ में एक शिवलिङ्ग है। कुएँ में जाने का मार्ग बंद रहता है, किसी निश्चित समय ही वह खुलता है। कुएँ में ऊपर से ही अक्षत-पुष्प चढ़ाया जाता है। पहले लोग यहाँ 'करवत'[1] लेते थे।

इस स्थान से थोड़ी दूर पर मदालसेश्वर शिवमन्दिर है। वहाँ से आगे कालिका-गली में चण्डी-चण्डीश्वर का मन्दिर है। उससे आगे एक मन्दिर में कालरात्रि दुर्गाजी का विग्रह है। आगे शुक्रकूप तथा शुक्रेश्वर महादेव हैं। यहाँ से थोड़ी दूर पर भवानीशंकर महादेव तथा भवानी गौरी का मन्दिर है। पास ही एक मकान में सृष्टिविनायक की मूर्ति है। इनसे थोड़ी दूर पर प्रतिकेश्वर शिव हैं। यहाँ से पश्चिम एक मकान में पञ्चमुख गणेश हैं।

ढुण्ढिराज गणेश के पश्चिम यज्ञविनायक-मन्दिर है। उससे थोड़ी दूर पर समुद्रेश्वर तथा ईशानेश्वर के मन्दिर हैं। श्रीविश्वेश्वर-मन्दिर से कुछ दूर पर चित्रघण्टा-विनायक हैं। वहाँ से उत्तर चित्रघण्टा देवी हैं। इस गली के बाहर पशुपतीश्वर-मन्दिर है। यहाँ से कुछ दूर पर शीतला गली में एक

1. स्वर्ग अथवा मोक्ष की कामना से जीवन से थके-हारे लोगों द्वारा स्वेच्छापूर्वक कुएँ में कूद कर आत्मोत्सर्ग करने को करवत या करवट कहते हैं। अब यह प्रथा बन्द है।

अँधेरे कूप में पितामहेश्वर-मूर्ति है, जिसका दर्शन केवल शिवरात्रि को होता है। यहाँ से थोड़ी दूर पर ब्रह्मपुरी मुहल्ले में कलशेश्वर महादेव तथा कलशेश्वरी देवी का मन्दिर है। यहाँ से थोड़ी दूर पर सत्यकालेश्वर महादेव हैं।

10. कालभैरव – यह मन्दिर भैरवनाथ मुहल्ले में है। यह सिंहासन पर स्थित चतुर्भुज मूर्ति है, जो चाँदी से मढ़ी है। मन्दिर के आगे बड़े महावीर तथा दाहिने मण्डप में योगीश्वरी देवी हैं। मन्दिर के पिछले द्वार के बाहर क्षेत्रपाल भैरव की मूर्ति है। श्रीभैरवजी का वाहन काला कुत्ता है। ये नगर के कोटपाल हैं। कार्तिककृष्णा 8, मार्गशीर्षकृष्णा 8, चतुर्दशी तथा रविवार को भैरवजी के दर्शन-पूजन का विशेष महत्त्व है।

कालभैरव के पास एक गली में व्यतीपातेश्वर(नवग्रहेश्वर) महादेव हैं। वहाँ से थोड़ी दूर पर कालेश्वर महादेव हैं, इस मन्दिर में तीन हाथ का कालदण्ड है। यहाँ काली की मूर्ति और कालकूप भी है। समीप ही जतनबर(चैतन्यवट) नामक स्थान है। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव काशी में यहीं ठहरे थे; प्रबोधानन्द सरस्वती ने यहीं उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था।

11. दुर्गाजी – असि-संगमघाट से थोड़ी दूर पर पुष्कर-तीर्थ सरोवर है। वहाँ से लगभग आधे मील पर दुर्गाकुण्ड नाम का विशाल सरोवर है। इसके किनारे दुर्गाजी का मन्दिर है। इस मन्दिर में कूष्माण्डादेवी की मूर्ति है, जिसे लोग दुर्गाजी कहते हैं। मन्दिर के घेरे में शिव, गणपति आदि देवताओं के मन्दिर हैं। मुख्य द्वार के पास दुर्गा-विनायक तथा चण्डभैरव की मूर्तियाँ हैं। पास ही कुक्कुटेश्वर महादेव हैं। राजा सुबाहु पर प्रसन्न होकर भगवती यहाँ दुर्गारूप से स्थित हुई हैं।

12. पिशाचमोचन – मातृकुण्डसे थोड़ी दूर पर लहुरावीर के पास यह कुण्ड है। यहाँ पिण्डदान से मृतात्मा प्रेतयोनि से छूट जाती है। यह बड़ा सरोवर है। घाट पर महावीर, कपर्दीश्वर, पञ्चविनायक, पिशाचमस्तक, विष्णु, वाल्मीकि तथा अन्य देवताओं की मूर्तियाँ हैं। यहाँ बाल्मीकेश्वर शिव तथा हेरम्ब-विनायक हैं।

13. कपालमोचन – बकरिया-कुण्ड से एक मील पर कपालमोचन कुण्ड है। यह बड़ा सरोवर है। यहाँ एक घेरे में एक सात फुट ऊँचा ताँबे से मढ़ा स्तम्भ है, जिसे लाटभैरव या कपालभैरव कहते हैं। यह स्थान जलालीपुर गाँव में है। यहाँ एक पत्थर की कुत्ते की मूर्ति और एक कुआँ है। यहाँ वरणा के आँवलीघाट पर चण्डीश्वर शिव तथा मुण्ड-विनायक हैं।

14. तिलभाण्डेश्वर – बंगाली टोला स्कूल के पास यह मन्दिर है। इसकी लिङ्गमूर्ति साढ़े चार फुट ऊँची है। इसके आगे केदारेश्वर-मन्दिर है। यहाँ शिवरात्रि को तथा श्रावण के सोमवारों को भीड़ रहती है।

15. संकटमोचन – दुर्गाजी, जिसका वर्णन किया जा चुका है, से आगे यह मंदिर एक बड़े बगीचे में है। यहाँ की हनुमान्‌जी की मूर्ति गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा स्थापित है। सामने राम मंदिर

है।

काशी में मन्दिर तो गली-गली में, घर-घर में हैं। यहाँ तो कुछ थोड़े से मन्दिरों का ही नाम दिया गया है; क्योंकि सबका वर्णन देना संभव नहीं है।

काशी का तीर्थदर्शन – अन्तर्वेदी और पञ्चक्रोशी परिक्रमाएँ

नित्ययात्रा – श्रीगङ्गाजी में या मणिकर्णिका कुण्ड में स्नान करके भगवान् विष्णु, दण्डपाणि, महेश्वर, ढुण्ढिराज, ज्ञानवापी, नन्दिकेश्वर, तारकेश्वर तथा महाकालेश्वर का दर्शन करके फिर दण्डपाणिका दर्शन करें और तब श्रीविश्वनाथजी एवं अन्नपूर्णाजी का दर्शन करें।

अन्तर्वेदी परिक्रमा – प्रातःकाल स्नान करके पञ्चविनायक तथा विश्वनाथजी का दर्शन करके निर्वाणमण्डप में जाकर नियम-ग्रहण करके मणिकर्णिका में स्नान करें और मौन होकर मणिकर्णकेश्वर का पूजन करें। वहाँ से कम्बलाश्वतर, वासुकीश्वर, पर्वतेश्वर आदि 68 स्थानों का दर्शन करके विश्वनाथजी का दर्शन करें और तब मौन समाप्त करें।

सामान्यदर्शन – जिनसे अन्तर्वेदी परिक्रमा नित्य नहीं हो सकती और नित्ययात्रा भी नहीं हो सकती, उन्हें प्रतिदिन मणिकर्णिका पर गङ्गास्नान करके ढुण्ढिराज गणेश, श्रीविश्ववनाथजी, श्रीअन्नपूर्णाजी और कालभैरवजी का दर्शन करना चाहिये।

पञ्चक्रोशी परिक्रमा – काशी की परिक्रमा 47 मील की है। इस मार्ग में स्थान-स्थान पर धर्मशालाएँ हैं। कई बाजार पड़ते हैं। भोजन की सामग्री तथा अन्य आवश्यक पदार्थों की दुकानें पूरे मार्ग में हैं। वैसे तो सभी महीनों में यह परिक्रमा होती है, किंतु मार्गशीर्ष में और फाल्गुन में विशेष यात्री परिक्रमा करते हैं। पुरुषोत्तम महीने(अधिक मास) में तो परिक्रमा-पथ में बराबर यात्रियों का मेला चलता रहता है।

पञ्चक्रोशी परिक्रमा सामान्यतः पाँच दिन में समाप्त होती है। कुछ लोग शिवरात्रि को एक ही दिन में पूरी परिक्रमा कर लेते हैं। मणिकर्णिका पर स्नान करके ज्ञानवापी, विश्वनाथजी, अन्नपूर्णा तथा ढुण्ढिराज गणेश का दर्शन करके पहले दिन छः मील चलकर यात्री कँड़वा नामक स्थान पर, जो चुनार की सड़क पर है, विश्राम करते हैं। इस स्थान पर कर्दमेश्वरमन्दिर है। दूसरे दिन कर्दमेश्वर से चलकर 10 मील दूर भीमचण्डी स्थान पर विश्राम होता है। तीसरे दिन भीमचण्डी से 14 मील दूर वरणा-किनारे रामेश्वर नामक स्थान पर विश्राम होता है। चौथे दिन रामेश्वर से 14 मील चलकर कपिलधारा नामक स्थान पर विश्राम किया जाता है। पाँचवें दिन कपिलधारा से 6 मील चलकर मणिकर्णिका घाट पर स्नान करके सिद्धि-विनायक, श्रीविश्वनाथजी, अन्नपूर्णाजी, ढुण्ढिराज, दण्डपाणि और कालभैरव का दर्शन करके यात्रा समाप्त करते हैं।

काशी के देवता

काशी में विश्वनाथजी को मिलाकर कुल 59 मुख्य शिवलिङ्ग हैं। 12 आदित्य हैं। 56 विनायक

हैं। 8 भैरव हैं। 9 दुर्गा हैं। 13 नृसिंह हैं। 16 केशव हैं। इनमें से बहुतों के मन्दिर एवं मूर्तियाँ लुप्त हो गयी हैं। बहुत से घरों में पड़ गये हैं।

काशी का पौराणिक इतिहास

महाराज सुदेव के पुत्र सम्राट दिवोदास ने गङ्गातट पर वाराणसी नगर बसाया था। एक बार भगवान् शंकर ने देखा कि पार्वतीजी को यह अच्छा नहीं लगता कि वे सदा पितृगृह में ही पति के साथ रहें। पार्वती की प्रसन्नता के लिये शंकरजी ने हिमालय छोड़कर किसी सिद्धक्षेत्र में रहने का विचार किया। उन्हें काशीक्षेत्र प्रिय लगा। शंकरजी ने अपने निकुम्भ नामक गण को आदेश दिया – 'वाराणसी को निर्जन करो।' निकुम्भ ने आदेश का पालन किया। नगर निर्जन हो जाने पर भगवान् शंकर अपने गणों के साथ वहाँ आकर रहने लगे। भगवान् शंकर के सांनिध्य में रहने की इच्छा से वहाँ देवता तथा नागलोग भी निवास करने लगे।

प्रतापी सम्राट दिवोदास अपनी राजधानी छिन जाने से दुःखी थे। उन्होंने तपस्या करके ब्रह्माजी से वरदान माँगा – 'देवता अपने दिव्यलोकों में रहें और नाग पाताललोक में। पृथ्वी मनुष्यों के लिये रहे।' ब्रह्माजी ने एवमस्तु कह दिया। फल यह हुआ कि शंकरजी तथा सब देवताओं को वाराणसी छोड़ देना पड़ा; किंतु शंकरजी ने यहाँ विश्वेश्वररूप से निवास किया तथा दूसरे देवता भी श्रीविग्रहरूप में स्थित हुए।

भगवान् शंकर काशी छोड़कर मन्दराचल पर चले तो गये, किंतु उन्हें अपनी यह नित्यपुरी बहुत प्रिय थी। वे यहीं रहना चाहते थे। उन्होंने राजा दिवोदास को यहाँ से निकालने के लिये चौसठ योगिनियाँ भेजीं; किंतु राजा ने उन्हें एक घाट पर स्थापित कर दिया। शंकरजी ने सूर्य को भेजा; किंतु इस पुरी का वैभव देखकर वे लोल(चञ्चल) बन गये और अपने बारह रूपों से यहीं बस गये। शंकरजी की प्रेरणा से ब्रह्माजी पधारे, उन्होंने दिवोदास की सहायता से यहाँ दस अश्वमेध यज्ञ किया और स्वयं भी बस गये। अन्त में शंकरजी की इच्छा पूर्ण करने भगवान् विष्णु यहाँ ब्राह्मण के रूप में पधारे। उन्होंने दिवोदास को ज्ञानोपदेश किया। इससे वह पुण्यात्मा नरेश विरक्त हो गया। नरेश ने स्वयं एक शिवलिङ्ग की स्थापना की। तदनन्तर विमान में बैठकर दिवोदास शंकरजी के धाम गये और तब भगवान् शंकर मन्दराचल से आकर काशी में स्थित हुए। भगवान् शिव का यह क्रीड़ाक्षेत्र अविमुक्तक्षेत्र, आनन्दकानन आदि नामों से प्रसिद्ध है। काशी में समस्त तीर्थ एवं सभी देवता निवास करते हैं। जब विश्वामित्रजी ने राजा हरिश्चन्द्र से समस्त राज्य दान में ले लिया, तब राजा इसी काशीपुरी में आये। यहीं उन्होंने अपनी पत्नी एक ब्राह्मण के घर दासी – कर्म के लिये बेची और स्वयं चाण्डाल के हाथ बिककर ऋषि को दक्षिणा दी।

(8) श्रीत्र्यम्बकेश्वर

यह ज्योतिर्लिङ्ग बंबई – प्रान्त के नासिक जिले में है। मध्य – रेलवे की जो लाइन इलाहाबाद

से बंबई को गयी है, उस पर बंबई से एक सौ सतरह मील तथा अठारह स्टेशन इधर नासिक-रोड नाम का स्टेशन है। वहाँ से छः मील की दूरी पर नासिक-पञ्चवटी है, जहाँ श्रीलक्ष्मणजी ने रावण की बहिन शूर्पणखा की नाक काटी थी और जहाँ सीताहरण हुआ था। नासिक-रोड से नासिक-पञ्चवटीतक बसें चलती हैं। नासिक-पञ्चवटी से मोटर के रास्ते अठारह मील दूर त्र्यम्बकेश्वर का स्थान है। मार्ग बड़ा मनोरम है। यहाँ के निकटवर्ती ब्रह्मगिरि नामक पर्वत से पूतसलिला गोदावरी निकलती हैं। जो माहात्म्य उत्तर-भारत में पाप-विमोचिनी गङ्गा का है, वही दक्षिण में गोदावरी का है। दक्षिण में यह गङ्गा नाम से ही प्रख्यात है। जैसे इस अवनीतल पर गङ्गावतरण का श्रेय तपस्वी भगीरथ को है, वैसे ही गोदावरी का प्रवाह ऋषिश्रेष्ठ गौतम की घोर तपस्या का फल है, जो उन्हें भगवान् आशुतोष से प्राप्त हुआ था।[1] गौतमीगंगा के साथ-साथ त्र्यम्बक लिंग भी उन्हीं की तपस्या का परिणाम है।

भगीरथ के प्रयत्न से भूतलपर अवतरित हुई माता जाह्नवी जैसे भागीरथी कहलाती हैं, वैसे ही गौतम ऋषि की तपस्या के फलस्वरूप आयी हुई गोदावरी का दूसरा नाम गौतमी है। इनकी भी महिमा बहुत अधिक है। बृहस्पति के सिंहराशि में आने पर यहाँ बड़ा भारी कुम्भ का मेला लगता है। इस कुम्भ के अवसर पर गोदावरी-स्नान का बड़ा भारी माहात्म्य है। इन्हीं पुण्यतोया गोदावरी के उद्गमस्थान के समीप अवस्थित त्र्यम्बकेश्वर भगवान् की भी बड़ी महिमा है। गौतम ऋषि तथा गोदावरी के प्रार्थनानुसार भगवान् शिव ने इस स्थान में वास करने की कृपा की और त्र्यम्बकेश्वर नाम से विख्यात हुए। ब्रह्मा और विष्णु के साथ शंकरजी त्र्यम्बकेश्वर बनकर ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में भक्तों के कल्याण के लिये बस गये। ब्रह्मगिरि का यह प्रदेश भी लिंगमूर्ति की तरह दिखाई देता है। उसकी चोटी से गौतमी गंगा का जल झर-झर बहता है।

शिवपुराण में त्र्यम्बकेश्वर के माहात्म्य के बारे में लिखा है कि त्र्यम्बकेश्वर के दर्शन एवं पूजन करनेवाले को इस लोक एवं परलोक में सदा आनंद रहता है। उसके सभी पातक नष्ट हो जाते हैं।

ज्योतिर्लिङ्गमिदं प्रोक्तं त्र्यंबकं नाम विश्रुतम्।
स्थितं तटे हि गौतम्या महापातकनाशनम्।।
यः पश्येद्भक्तितो ज्योतिर्लिङ्गं त्र्यंबकनामकम्।
पूजयेत्प्रणमेत्स्तुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।।
.....
सर्वकामप्रदं चात्र परत्र परमुक्तिदम्।। (शिवपु. को. रु. सं. 26/54-56)

गौतमीतट का यह दिव्य ज्योतिर्लिङ्ग अनोखा है। यहाँ के मन्दिर के गर्भगृह में अन्य स्थानों की तरह शिवलिंग पर जलहरी या अर्घा नहीं है। उस स्थान पर उखली जैसा केवल गड्ढा दिखाई देता

1. त्र्यम्बकेश्वर लिंग तथा गोदावरी दोनों ही गौतम की घोर तपस्या का परिणाम है। इसके बारे में विस्तृत जानकारी के लिए इसी पुस्तक में लिखे गये लेख, 'गौतम ऋषि की शिवभक्ति' को पढ़ें।

है। उस गड्ढे में अंगूठे के आकार के तीन लिंग हैं, जिन्हें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश का प्रतीक माना जाता है। उन तीनों में से महेश के लिंग पर प्राकृतिक रूप से जल टपकने के कारण निरन्तर अभिषेक होता रहता है।

पूर्व द्वार से मन्दिर में प्रवेश करके सिद्धविनायक और नन्दिकेश्वर के दर्शन करते हुए मन्दिर में भीतर जाने पर त्र्यम्बकेश्वर के दर्शन होते हैं। अर्घे के गड्ढे में स्थित लिंगों की पूजा के पश्चात् उसपर चाँदी का पंचमुख चढ़ा दिया जाता है और उसी के दर्शन होते हैं।

गोदावरी ब्रह्मगिरि के जिस कगार से निकली दीखती है उस स्थान को गंगाद्वार कहते हैं। यहाँ के एक गोमुख से गंगा का पानी नित्यरूप से बूंद-बूंद झरता रहता है। ब्रह्मगिरि गोदावरी का उद्गम स्थान होते हुए भी वह वहाँ लुप्त है और वह गंगाद्वार में प्रकट है। गोदावरी माता का मन्दिर गोमुख पर है। इसके पास ही वाराहतीर्थ है।

गंगाद्वार से निकलकर गोदावरी आगे चलकर थोड़ी दूर पर ही लुप्त हो जाती है और तलहटी में फिर से प्रकट होती है। यह वहाँ से फिर लुप्त न हो इसलिये गौतम ऋषि ने चारों दिशाओं में कुश फेंक दिया जिससे गोदावरी कुशावर्त में बहती रही।

कुशावर्त त्र्यम्बकेश्वर मन्दिर से थोड़ी दूर पर है। कुशावर्त महातीर्थ(सरोवर) 27 मीटर वर्गाकार रूप में है। यह तीर्थ काफी मजबूती से बना है। आने-जाने के लिये चारों ओर सीढ़ियों का प्रबंध किया गया है। इस सरोवर में नीचे से गोदावरी का जल आता रहता है। इस सरोवर में स्नान नहीं किया जाता। उसका जल लेकर बाहर स्नान करते हैं। यहाँ स्नान करके त्र्यम्बकेश्वरजी का दर्शन करते हैं। लोग कुशावर्त की परिक्रमा भी करते हैं। कुशावर्ततीर्थ के चारों ओर बरामदे बनाये गये हैं तथा उनमें सुन्दर मूर्तियाँ भी खुदी हैं।

त्र्यम्बकेश्वरजी का एक सोने का पंचमुख भी है जो प्रति सोमवार को गाजे-बाजे के साथ पालकी में कुशावर्त लाया जाता है। वहाँ उसकी सविधि पूजा होती है। त्र्यम्बक मन्दिर के पीछे परिक्रमा-मार्ग में अमृतकुण्ड नामक एक कुण्ड है।

त्र्यम्बक शहर समुद्र सतह से 2500 फीट की ऊचाई पर बसा है। त्र्यम्बकेश्वर का वर्तमान मन्दिर नाना साहब पेशवा ने बनवाया था। मन्दिर के चारों ओर पत्थरों का मजबूत परकोटा है। प्रांगण विस्तृत है। पूर्व की ओर महाद्वार है। इस मन्दिर के खंभों पर सुन्दर नक्काशी किया हुआ है। मुख्य मन्दिर के सामने नंदी का भी एक मन्दिर है।

इस मन्दिर में विशेष अवसरों पर बड़े उत्सव आयोजित किये जाते हैं। ऐसे विशेष पर्व पर भगवान् को ऊँचे वस्त्र और अलंकारों से सजाया जाता है और रत्नों से जड़ा ताज भी पहनाया जाता है। यह ताज नारो शंकरजी ने दक्षिण भारत में किये आक्रमण के समय प्राप्त किया था। यह ताज उन्होंने शंकर भगवान् को समर्पित कर दिया था। सरदार विंचुरकरजी ने भगवान् के लिये एक सुन्दर रथ भी दिया

था।

त्र्यबकेश्वर की परिक्रमा कुशार्वत से प्रारम्भ होकर त्र्यम्बकेश्वर, प्रयागतीर्थ, रामतीर्थ, बाणगंगा आदि 15 तीर्थों से होते हुए अन्त में त्र्यम्बेकश्वर और कुशावर्त में समाप्त हो जाती है। त्र्यम्बकेश्वर के समीप तीन पर्वत पवित्र माने जाते हैं – ब्रह्मगिरि, नीलगिरि और गंगाद्वार। इनमें से अधिकांश यात्री केवल गंगाद्वार जाते हैं। ब्रह्मगिरि पर्वत पर त्र्यम्बकेश्वर का जीर्ण किला है। पर्वत पर जाने के लिये लगभग 500 सीढ़ियाँ हैं। यहाँ एक जलपूरित कुण्ड है और उसके पास त्र्यम्बकेश्वर – मन्दिर है। पास ही गोदावरी का मूल उद्‌गम है। ब्रह्मगिरि को शिवस्वरूप माना जाता है। कहते हैं कि ब्रह्मा के शाप से भगवान् शंकर यहाँ पर्वतरूप में स्थित हैं। इस पर्वत के पाँच शिखर हैं। उनके नाम सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान हैं।

नीलगिरि पर्वत पर 250 सीढ़ियाँ चढ़कर जाना पड़ता है। यह ब्रह्मगिरि की वाम गोद है। वहाँ नीलकण्ठेश्वर मन्दिर भी है इसे सिद्धतीर्थ कहा जाता है। यहाँ नीलाम्बिका देवी तथा दत्तात्रेयजी का भी मन्दिर है। गंगाद्वार पर्वत पर 750 सीढ़ियाँ चढ़कर जाना पड़ता है। इसे कौलगिरि भी कहते हैं। ऊपर गोदावरीगंगा का मन्दिर है। मूर्ति के चरणों के समीप धीरे – धीरे बूंद – बूंद जल निकलता है। यह जल समीप के एक कुण्ड में एकत्र होता है। पंचतीर्थों में यह एक तीर्थ है।

गंगाद्वार के पास ही उत्तर की ओर कौलाम्बिका देवी का मन्दिर है। यहाँ से थोड़ी दूर पर पर्वत में एक स्थान पर 108 शिवलिंग खुदे हैं। पर्वत में 2 – 3 गुफाएँ हैं, जिनमें एक गोरखनाथजी की गुफा है। एक गुफा में राम – लक्ष्मण की मूर्तियाँ हैं जिसे वाराह गुफा कही जाती है।

(9) वैद्यनाथ

यह स्थान झारखण्ड के देवघर जिले में पूर्व – रेलवे के जसीडीह स्टेशन से 3 मील दूर एक ब्रांच – लाइन पर है। '**परल्यां वैद्यनाथं च**' इस वचन के अनुसार कोई – कोई इसे असली वैद्यनाथ न मानकर हैदराबाद – राज्य के अन्तर्गत परली ग्राम के शिवलिङ्ग को वैद्यनाथ – ज्योतिर्लिङ्ग मानते हैं; परंतु द्वादश – ज्योतिर्लिङ्ग – सम्बन्धी वर्णन में शिव – पुराण के अंदर जो इनकी तालिका दी गयी है, उसमें '**वैद्यनाथं चिताभूमौ**' यह पद आता है, जिससे जसीडीह के पासवाला वैद्यनाथ – शिवलिङ्ग ही वास्तविक वैद्यनाथ – ज्योतिर्लिङ्ग सिद्ध होता है; क्योंकि चिताभूमि इसी स्थल को कहते हैं। जब भगवान् शङ्कर सती के शव को कंधे पर रखकर उन्मत्त की भाँति फिर रहे थे, तब इसी स्थान पर सती का हृत्पिण्ड गिरा था, जिसका उन्होंने यहीं दाह – संस्कार किया था।

इस लिङ्ग की स्थापना का इतिहास यह है कि एक बार राक्षसराज रावण ने हिमालय पर जाकर शिवजी की प्रसन्नता के लिये घोर तपस्या की और अपने सिर काट – काटकर शिवलिङ्ग पर चढ़ाने शुरू कर दिये। एक – एक करके नौ सिर चढ़ाने के बाद दसवाँ सिर भी काटने को ही था कि शिवजी प्रसन्न होकर प्रकट हो गये। उन्होंने उसके दसों सिर ज्यों – के – त्यों कर दिये और फिर वरदान माँगने

को कहा । रावण ने लङ्का में जाकर उस लिङ्ग को स्थापित करने के लिये उसे ले जाने की आज्ञा माँगी। शिवजी ने अनुमति तो दे दी, पर इस चेतावनी के साथ कि यदि मार्ग में वह इसे पृथ्वी पर रख देगा तो वह वहीं अचल हो जायगा। अन्ततोगत्वा वही हुआ। रावण शिवलिङ्ग लेकर चला; पर मार्ग में यहाँ 'चिताभूमि' में आने पर उसे लघुशङ्का निवृत्ति की आवश्यकता हुई और वह उस लिङ्ग को एक अहीर (ग्वाले) को थमा लघुशङ्का - निवृत्ति के लिये चला गया। इधर उस अहीर (ग्वाले) ने उसे बहुत अधिक भारी अनुभव कर भूमि पर रख दिया। बस, फिर क्या था; लौटने पर रावण पूरी शक्ति लगाकर भी उसे न उखाड़ सका और निराश होकर मूर्ति पर अपना अँगूठा गड़ाकर लङ्का को चला गया। इधर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं ने आकर उस शिव - लिङ्ग की पूजा की और शिवजी का दर्शन करके उनकी वहीं प्रतिष्ठा की और स्तुति करते हुए स्वर्ग को चले गये।

शिवपुराण (कोटिरु. सं. अध्याय 28) की उपर्युक्त कथा थोड़े अन्तर के साथ (पद्मपुराण - पातालखण्ड में) इस प्रकार प्रचलित है। जब रावण ज्योतिर्लिङ्ग को लंका ले जा रहा था तो देवताओं ने उसमें बाधा डालने का निश्चय किया। फलस्वरूप रावण के उदर में वरुणदेव ने प्रवेश किया फलस्वरूप रावण को लघुशंका का अत्यधिक वेग प्रतीत हुआ। विवश होकर वह आकाश से पृथ्वी पर उतर पड़ा। वृद्ध ब्राह्मण का वेश बनाये भगवान् विष्णु वहाँ पहले से खड़े थे। रावण कुछ क्षण के लिये वह मूर्ति ब्राह्मण को दे लघुशंका के लिये बैठ गया। वरुणदेव के प्रभाव से वह अपनी लघुशंका को शीघ्र पूरा नहीं कर सका। फलस्वरूप वृद्ध ब्राह्मण अधिक प्रतीक्षा न करते हुए मूर्ति को पृथ्वी पर रखकर चला गया। बाद में रावण मूर्ति - उठाने की असफल चेष्टा करने लगा। उस समय शिवलिंग तो पातालतक चला गया था। भूमि के ऊपर तो वह केवल आठ अंगुल शेष रहा था। निराश होकर रावण ने चन्द्रकूप नामक कूप बनाया, उसमें तीर्थों का जल एकत्र करके उसने वैद्यनाथजी का उसी कूप के जल से अभिषेक किया। इसके पश्चात् आकाशवाणी द्वारा आश्वासन पाकर वह लंका चला गया। रावण के जाने के पश्चात् बैजू नामक भील ने इस मूर्ति को देखा और उसी ने उसका प्रथम पूजन किया। बैजू जीवन भर इस मूर्ति का अनन्य सेवक रहा। कहा जाता है कि उसी के नाम पर यह लिंग बैजनाथ कहलाया।

वैद्यनाथलिंग सत्पुरुषों को भोग और मोक्ष देनेवाला है। यह ज्योतिर्लिङ्ग दर्शन और पूजन से समस्त पापों को हर लेता है और मोक्ष और भोग की प्राप्ति कराता है।

वैद्यनाथेश्वरं नाम्ना तल्लिंगमभवन्मुने ।
प्रसिद्धं त्रिषु लोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ।।
ज्योतिर्लिङ्गमिदं श्रेष्ठं दर्शनात्पूजनादपि ।
सर्वपापहरं दिव्यं भुक्तिवर्द्धनमुत्तमम् ।। (शिवपु. कोटिरु. सं. 28/20-21)

वैद्यनाथधाम को देवघर भी कहा जाता है। पूर्वी रेलवे की हावड़ा - पटना लाईन पर जसीडीह स्टेशन है। जसीडीह से वैद्यनाथधाम स्टेशन 6 किलोमीटर है। जसीडीह से बैद्यनाथधाम के लिये बसें, टैक्सी आदि

प्रचुरमात्रा में उपलब्ध हैं। वायुयान से भी देवघर पहुँचा जा सकता है। वैद्यनाथधाम स्टेशन से मन्दिर लगभग 2 किलोमीटर है। मन्दिरतक पक्की सड़क है और बहुत सी सवारियाँ मिलती हैं । वैद्यनाथ धाम न केवल ज्योतिर्लिङ्ग है अपितु 51 शक्तिपीठों में से एक है। यहाँ सती के देह से हृदय गिरा था।

यहाँ का मुख्य मन्दिर वैद्यनाथधाम ही है। जिसे रावणेश्वर भी कहते हैं। मन्दिर के घेरे में ही पुष्पादि तथा तीर्थों का जल बिकता है। लिंगमूर्ति ऊचाई में बहुत छोटी है। आधारपीठ से उसका उभाड़ थोड़ा ही है। श्रीवैद्यनाथ–मन्दिर के घेरे में ही 21 मन्दिर और हैं जिनमें गौरीमन्दिर, जो वैद्यनाथजी के सामने ही स्थित है, यहाँ का शक्तिपीठ है। इसमें एक ही सिंहासन पर श्रीजयदुर्गा तथा त्रिपुरसुन्दरी की दो मूर्तियाँ विराजमान हैं। वैद्यनाथजी का मन्दिर सभी मन्दिरों के मध्य में है। इसके तीन प्रवेशद्वार हैं–उत्तर, पश्चिम और पूर्व दिशा में। मुख्य द्वार उत्तर की ओर है जिसके दोनों ओर दो सिंह की मूर्तियाँ हैं। सिंहद्वार से मन्दिरप्रांगण में घुसते ही बाँई ओर एक प्राचीन बड़ा गहरा कुआँ है जिसका जल भी भक्तगण मन्दिर में चढ़ाते हैं।

मुख्य मन्दिर के भीतर शिवलिंग एक अरघे के बीच स्थापित है जिसके ऊपर चाँदी का एक अर्द्धचन्द्र चमकता है। लिंगमूर्ति ग्यारह अंगुल ऊँची है और उसके ऊपर जरा सा गड्ढा है जिसे माना जाता है कि रावण ने अपने अंगूठे के दवाब से बना दिया था। शिवमन्दिर के ऊपर एक विशाल स्वर्ण कलश है। कहा जाता है कि इसे गिद्धौर के राजा श्रीचन्द्रमौलेश्वर सिंह ने प्रदान किया था। यह भी कहा जाता है कि इससे पूर्व वहाँ एक ताँबे का कलश था जो 1857 ई० में सिपाही विद्रोह के दौरान क्षतिग्रस्त हो गया था। वह ताम्रकलश स्वर्ण–कलश के अंदर वर्तमान है। मन्दिर के भीतरी प्रकोष्ठ में शिखर के निम्न भाग में एक चमकता रत्न दिखाई पड़ता है। इसकी जानकारी सन् 1962 में तब हुई जब शिवजी के ऊपर का चंदोवा खोला गया। चातुर्पार्श्व आकार में अष्टदल कमल है। इसके बीच में एक छोटा सा चमकता हुआ रत्न है। शिवमन्दिर के बाहर पूर्वी दरवाजे के दायें नन्दी की पत्थर की तीन मूर्तियाँ हैं। पहले नन्दी की मूर्ति मन्दिर के भीतर ही थी। शिवमन्दिर से दक्षिण संध्या और कालभैरव मन्दिर के मध्य पीतल का एक बड़ा और मजबूत घण्टा लोहे के बीम में लटकाया हुआ है जिसे विक्रम सम्वत् 1913 कार्तिक शुक्ल पूर्णमासी के दिन बुधवार को नेपाल नरेश विकृमशाहदेव ने अपनी पत्नी तथा युवराज की उपस्थिति में दानस्वरूप प्रदान किया था।

शिवमन्दिर के मध्य भाग में गर्भद्वार स्थित ऊपरी भाग पर शिलालेख में यह अंकित है कि शाके 1517 में पूरणराजा ने सर्वकामप्रदम् शिव के मन्दिर का निर्माण कर पवित्र गुणवाले निष्ठावान् ब्राह्मण रघुनाथ को दान दिया। राजा पूर्णानन्द ने संवत् 1514 में इस मन्दिर का निर्माण कार्य प्रारंभ किया था जो तीन वर्षों में पूर्ण हुआ। मन्दिरनिर्माण कराने के बाद पूरण सिंह ने शिव के अभिषेक के लिये चाँदी का एक कलश प्रदान किया था जो काफी बड़ा और छिद्र युक्त है। इस कलश को त्रिपादी पर रखकर ग्रीष्म ऋतु में शिवजी का अभिषेक किया जाता है।

भगवान् शिव के दर्शनार्थ श्रावण महीने में यहाँ भारत के कोने-कोने से लाखों यात्री आते हैं। अधिकांश शिवभक्त सुलतानगंज स्थित उत्तरवाहिनी गंगा में स्नान कर कांवरों में जल भरते हैं और सुसज्जित कांवर लेकर पैदल (नंगेपाव) ही बम-बम बोलते हुए लगभग 110 कि. मी. की यात्रा करते हैं और मन्दिर में पहुँचकर भगवान् वैद्यनाथ पर जल चढ़ाते हैं। बहुत से भक्त खड़ी-खड़ी कांवर लेकर यात्रा करते हैं। यह दृश्य बड़ा ही सुहावना एवं भव्य होता है। पैदल चलनेवालों में सभी वर्गों के पुरुष, महिलायें व बच्चे, अमीर, गरीब, विद्वान् एवं मूर्ख सभी तरह के लोग होते हैं। बहुतों के पांवों में छाले पड़ जाते हैं फिर भी वे आनंदपूर्वक इस यात्रा को पूरा करते हैं।

सुलतानगंज उत्तरवाहिनी गंगा के कारण धार्मिक दृष्टि से पवित्र माना जाता है। यहाँ गंगा के बीचो बीच एक पहाड़ी है जहाँ अजगैबीनाथ का मन्दिर है। इसी पहाड़ी पर जह्नु ऋषि ने अपना आश्रम बनाया था। अजगैबीनाथ मन्दिर में शिवलिंग स्थापित है। चीनी यात्री हु एन् त्सांग ने जब भागलपुर की यात्रा की थी तब उसने अपनी यात्राडायरी में सुलतानगंज को हिरण्य जनपद लिखा है। यहाँ मगध के राजा बिम्बिसार का शासन था। 13 वीं शताब्दी में यह सुल्तानों के शासन में आया और संभवत: उसी समय से इसका नाम सुल्तानगंज पड़ा। सुल्तानगंज से कांवर लेकर बाबाधाम पैदल जाने का बड़ा महत्त्व बताया जाता है। कहा जाता है कि कंधे पर कांवर लेकर जो नर-नारी 'बोल बम' का उच्चारण कर चलते हैं उन्हें अश्वमेध यज्ञ के पुण्य का फल प्राप्त होता है। भगवान् शिव कांवर के जल से अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। सर्वप्रथम नारदजी के निर्देशानुसार रावण ने हरिद्वार में गंगा में स्नान कर जल भरकर कैलास की यात्रा की थी और वहाँ शिवलिंग पर गंगाजल चढ़ाया था ।

वैद्यनाथधाम से करीब 25 कि. मी. पूर्व की ओर दुमका जानेवाले रास्ते से करीब दो किलोमीटर चलने पर बायीं तरफ वासुकीनाथ नामक एक पवित्र तीर्थ है। लाखों यात्री प्रतिवर्ष भगवान् वासुकीनाथ के लिंग पर जल चढ़ाते हैं। पहले इसका नाम नागनाथ था। कुछ लोग इसे ही नागेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग मानते हैं।

कुछ लोग (विशेषकर दक्षिण के लोग) परली या पुरली के वैजनाथ को ही वैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्ग मानते हैं। यह गाँव मेरू पर्वत अथवा नागनारायण पर्वत की ढलान पर बसा है। ब्रह्मा, वेणू और सरस्वती इन तीन नदियों के आसपास बसा परली एक प्राचीन गाँव है। इस गाँव को कांतीपुर, मध्यरेखा, वैजयंती अथवा जयंतीक्षेत्र- इन नामों से भी जाना जाता है। यहाँ शंकरजी पार्वती के साथ निवास करते हैं। इन दोनों का एक साथ रहना केवल परली के ज्योतिर्लिङ्ग में ही दिखाई देता है। इस स्थान को 'अनोखी काशी' भी कहते हैं। वहाँ के लोग इसका काशी जैसा महत्त्व समझते हैं।

देव-दानवों द्वारा किये गये समुद्रमंथन से धनवंतरी एवं अमृत प्राप्त हुए थे। अमृत पाने के लिये दानव दौड़े तब विष्णुजी ने अमृत के साथ धनवंतरी को शंकर भगवान् की लिंगमूर्ति में छिपाया था। दानवों ने जैसे ही लिंगमूर्ति को छूने की कोशिश की वैसे ही लिंगमूर्ति से ज्वालायें निकलीं और दानव

भाग गये। लेकिन शंकरभक्तों ने जब लिंगमूर्ति को छुआ तो उसमें से अमृत की धारायें निकलीं। आज भी इस ज्योतिर्लिङ्ग को स्पर्श करके दर्शन करने की पद्धति है। लिंगमूर्ति में धनवन्तरी और अमृत रहने के कारण उसे अमृतेश्वर तथा धनवन्तरी भी कहा जाता है। चूँकि धनवन्तरी वैद्य थे इसलिये इस ज्योतिर्लिङ्ग का नाम वैद्यनाथ पड़ा। इसका एक नाम वैजयंती भी है। वैद्यनाथ को आत्मलिंग माना जाता है। आत्मलिंग का दूसरा भाग गोकर्ण महाबलेश्वर माना जाता है।

काचीगुडा – मनमाड लाइन पर औरंगाबाद से लगभग 170 कि. मी. दूर परभनी स्टेशन है। बम्बई से प्रयाग की ओर जानेवाली मध्य रेलवे लाइन पर बम्बई से लगभग 250 कि. मी. पर मनमाड स्टेशन है। मनमाड से पूर्णा को एक लाइन गयी है। इस लाइन पर परभनी नामक जंकशन है जहाँ से परलीतक एक ब्रान्च लाइन गयी है। परभनी से परली स्टेशन लगभग 60 कि. मी. है। स्टेशन से लगभग एक किलोमीटर पर पर्वत के नीचे बैजनाथ मन्दिर है।

परली गाँव के पास ही ऊँचे स्थान पर यह भव्य मन्दिर पत्थरों से बना है। मन्दिर के चारों ओर मजबूत दीवार है। आंतरिक भाग में बरामदा और बड़ा आंगन है। मन्दिर के बाहर ऊँचा दीपस्तंभ है। महाद्वार के पास एक मीनार है। उसे प्राची या गवाक्ष कहते हैं। मन्दिर में जाने के लिये मजबूत और बड़ी सीढ़ियाँ हैं। उन्हें घाट कहते हैं। पुराना घाट शक 1108 में बनवाया गया था। मन्दिर में भगवान् का गर्भगृह और सभागृह दोनों समान धरातल पर होने के कारण सभागृह से ही भगवान् के दर्शन होते हैं।

वैद्यनाथजी की लिंगमूर्ति शालग्राम – शिला से बनी है। वह बहुत चिकनी, भव्य एवं सुन्दर दिखायी देती है। मन्दिर के गर्भगृह के चारों ओर नंदादीप जलते रहते हैं। भगवान् वैद्यनाथ के मन्दिर का जीर्णोद्धार शक 1706 में इंदौर की रानी अहिल्याबाई होलकर ने परली के पास त्रिशूलादेवी पहाड़ के विशेष पत्थरों द्वारा करवाया था। मन्दिर का भव्य सभामंडप रामराव नाना देशपाण्डे ने गाँव के कारीगरों तथा भक्तगणों की सहायता से बनवाया था। मन्दिर के आहाते में शंकरजी के ग्यारह और मन्दिर हैं। यह स्थान वीरशैव लिंगायतों का एक श्रेष्ठ तीर्थ माना गया है।

श्रीमंत पेशवा ने इस देवस्थान की व्यवस्था के लिये काफी जमीन जागीर के रूप में दी थी। आज यह व्यवस्था एक समिति के द्वारा की जाती है। सावन के महीने में होनेवाली वैद्यनाथ की पूजा के अंगभूत रुद्राभिषेक मंत्रोच्चार से परली का परिसर गूँज उठता है।

कहा जाता है कि अल्पायु मार्कण्डेयजी को यमराज की पकड़ से शिवजी ने यहीं पर मुक्त किया था। उनकी स्मृति में यहाँ मार्कण्डेय नाम का एक तालाब बनाया गया है। सावित्री – सत्यवान् की कथा की पुण्यभूमि भी यही मानी जाती है। नारायण की पहाड़ी पर सावित्री की कथा का वटवृक्ष आज भी खड़ा है। वहाँ एक वटेश्वर का मन्दिर भी है। परली में अनेक मन्दिर, आश्रम, समाधि, तीर्थ एवं पवित्र स्थान हैं। उनकी कथाएँ भी कई हैं। सबसे पहले बिना सूँड के गणेशजी, जो पहलवान के समान बैठे

हैं, का दर्शन करने के बाद ही वैद्यनाथ का दर्शन करना पड़ता है। मन्दिर के एक ओर तो परली बाजार है और दूसरी ओर सरोवर तथा एक नदी है।

(10) नागेश्वर[1]

नागेश्ववर – भगवान् का स्थान गोमती[2] – द्वारका से बेट (भेट) द्वारका को जाते समय कोई बारह – तेरह मील पूर्वोत्तर की ओर रास्ते में मिलता है। द्वारका से इस स्थान पर जाने के लिये मोटर, टैक्सी आदि का प्रबन्ध है। द्वारका को जाने के लिये राजकोटतक वही मार्ग है, जो वेरावल (सोमनाथ) जाने के लिये ऊपर बताया जा चुका है। राजकोट से पश्चिम – रेलवे की वीरमगाम – ओखा लाइन द्वारा द्वारका जाया जा सकता है अथवा राजकोट से जामनगर और वहाँ से जामनगर – द्वारका लाइन से द्वारका पहुँच सकते हैं।

लिङ्ग की स्थापना के सम्बन्ध में यह इतिहास है कि एक सुप्रिय नामक वैश्य था, जो बड़ा धर्मात्मा, सदाचारी और शिवजी का अनन्य भक्त था । एक बार जबकि वह नौका पर सवार होकर कहीं जा रहा था, अकस्मात् दारुक नाम के एक राक्षस ने आकर उस नौका पर आक्रमण किया और उसमें बैठे हुए सभी यात्रियों को अपनी पुरी में ले जाकर कारागार में बंद कर दिया। पर सुप्रिय की शिवार्चना वहाँ भी बंद नहीं हुई। वह तन्मय होकर शिवाराधन करता और अन्य साथियों में भी शिव – भक्ति जागृत करता रहता। संयोग से इसकी खबर दारुक के कानोंतक पहुँची और उस स्थान पर आ धमका। सुप्रिय को ध्यानावस्थित देखकर, 'रे वैश्य! यह आँख मूँदकर तू कौन – सा षड्यन्त्र रच रहा है?' कहकर उसने एक जोर की डाँट लगायी, किंतु इतने पर भी सुप्रिय की समाधि भङ्ग न होते देख उसने अपने अनुचरों को उसकी हत्या करने का आदेश दिया; परंतु सुप्रिय इससे भी विचलित नहीं हुआ। वह भक्त – भयहारी शिवजी को ही पुकारने लगा। फलत: उस कारागार में ही भगवान् शिव ने एक ऊँचे स्थान पर एक चमकते हुए सिंहासन में स्थित ज्योतिर्लिङ्गरूप से दर्शन दिया। दर्शन ही नहीं, उन्होंने उसे अपना पाशुपतास्त्र भी दिया और अन्तर्धान हो गये। इस पाशुपतास्त्र से समस्त राक्षसों का संहार करके सुप्रिय शिवधाम को चला गया। भगवान् शिव के आदेशानुसार ही इस ज्योतिर्लिङ्ग का नाम नागेश पड़ा। इसके दर्शन का बड़ा माहात्म्य है। कहा गया है कि जो आदरपूर्वक इसकी उत्पत्ति और माहात्म्य को सुनेगा,

---

1. नागेश्वर लिङ्ग दो और हैं। एक नागेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग महाराष्ट्र में है; परंतु शिवपुराण को देखने से पूर्वोक्त द्वारका – मार्ग के नागेश्वर ही प्रामाणिक मालूम होते हैं।

कुछ लोगों के मतानुसार अल्मोड़ा से 17 मील उत्तर – पूर्व में स्थित यागेश (जागेश्वर) शिवलिङ्ग ही नागेश – ज्योतिर्लिङ्ग है।

2. इस समय दो द्वारकाएँ हैं। एक द्वारका तो स्थल से लगी हुई है। उसके समीपवर्ती एक खाड़ी में जिसे गोमती कहते हैं, ज्वारभाटा आता है। यहाँ गोमती – चक्र भी मिलते हैं। इसी से इसे 'गोमतीद्वारका' कहते हैं। दूसरी द्वारका, जो बेट – द्वारका कहलाती है, गोमती – द्वारका से 20 मील हटकर एक द्वीप पर बसी हुई है।

वह समस्त पापों से मुक्त होकर समस्त ऐहिक सुखों को भोगता हुआ अन्त में परमपद को प्राप्त होगा–

एतद् यः शृणुयान्नित्यं नागेशोद्भवमादरात्।
सर्वान् कामानियाद् धीमान् महापातकनाशनान्।।

(शि. पु. को. रु. सं. अ. 30/44)

जो लोग नागेश्वर को महाराष्ट्र के अवढ़ा नागनाथ से अभिन्न मानते हैं उनके अनुसार नागेश लिंग का 'दारुकवन' में होना वर्णित है। दारुकवन अवढ़ा नागनाथ में ही स्थित है। द्वारका के आसपास किसी वन के कभी होने का वर्णन नहीं मिलता।

दारुका वन में औंढ्या (औढ़ा या अवढ़ा) नागनाथ ज्योतिर्लिङ्ग मराठवाड़ा के परभणी जिले में है। वहाँ आने-जाने के लिये अब बहुत सुविधायें हो गयी हैं। यहाँ का पहाड़ी प्रदेश वनों से सम्पन्न है।

काचीगुडा-मनमाड लाइन पर औरंगाबाद से लगभग 170 कि. मी. दूर परभनी स्टेशन है। यहाँ से एक लाइन पुरली-बैजनाथतक जाती है। इस लाइन पर परभनी से 21 कि. मी. दूर धौडी स्टेशन है। वहाँ से अवढ़ा-नागनाथ 18 कि. मी. है। स्टेशन से वहाँतक बस टैक्सी आदि जाती हैं।

दक्षप्रजापति ने जब अपने यज्ञ में शंकरजी को निमंत्रण नहीं दिया था तो सती इस अपमान को सह न सकीं और यज्ञकुण्ड में कूद कर आहुति दे दी। इस समाचार से शंकरजी दुःखी हुए। शोक में वे जंगल-जंगल भटकते रहे। घूमते-घूमते वे अमर्दक नाम के एक विशाल झील के तट पर आकर रहने लगे। इस स्थान पर भी उनके संबंध में कुछ अपमानजनक घटनायें घटीं। फलस्वरूप विरक्त भगवान् शंकर ने अपना शरीर भस्म कर डाला। बाद में वनवासी पाण्डवों ने उस अमर्दक झील के परिसर में अपना आश्रम बनाया। उनकी गायें पानी पीने के लिये उस झील पर आती थीं। पानी पीने के बाद गायें अपने स्तन से दुग्धधारायें बहाकर झील में अर्पित करती थीं। एक दिन भीम ने यह चमत्कार देखा। उन्होंने धर्मराज को यह बात बतायी। धर्मराज ने कहा, 'इस झील में कोई दिव्य देवता निवास कर रहा है।' पाण्डवों ने झील का पानी निकालना शुरू किया। झील के मध्य में पानी इतना उष्ण था कि वह उबल रहा था। तब भीम ने अपनी गदा से झील के पानी पर तीन बार प्रहार किया। पानी झट से हट गया। उसी समय भीतर से पानी के बदले खून की धारायें निकलने लगीं। भगवान् शंकर का दिव्य ज्योतिर्लिङ्ग भी झील की तलहटी में दिखायी दिया।

धर्मराज ने उस दिव्यलिंग की पूजा की और वहाँ सुन्दर मन्दिर का निर्माण किया। कहा जाता है कि वह लिंगमूर्ति इतनी तेजोमय थी कि उसका तेज मनुष्य के लिये असह्य था। इसलिये युधिष्ठिर ने मूर्ति के ऊपर गंडकी नदी की रेत की पिण्डी स्थापित की और शिला का पीठ बैठाया। तभी से मूर्ति का वह परिवर्तित रूप ही उपलब्ध है। भीम द्वारा गदा के तीन प्रहार जिन स्थानों पर हुए वहाँ खाण्डेश्वर, कनकेश्वर और पद्मावति-इन तीन देवताओं के मन्दिरों का भी निर्माण उन्होंने किया।

नागेश मन्दिर विशाल है, इसका शिल्प सौन्दर्य भी अनोखा है। पत्थरों से बना यह मन्दिर बहुत मजबूत है। मन्दिर की चहारदीवारी भी मजबूत है। मन्दिर के बरामदे विस्तृत हैं। सभामंडप आठ खम्भों पर आधारित है। मंडप का आकार गोल है। नागेश की मुख्य लिंगमूर्ति आंतरिक छोटे गर्भगृह में रखी गयी है। मन्दिर में चार सीढ़ी नीचे उतरने पर एक हाथ ऊँचे शिवलिंग के दर्शन होते हैं। सीढ़ियों पर से ही दर्शन करना पड़ता है। यहाँ महादेवजी के सामने नंदी नहीं हैं। मुख्य मन्दिर के पीछे नंदीकेश्वरजी का अलग से मन्दिर है। मुख्य मन्दिर के चारों ओर बारह ज्योतिर्लिङ्गों के छोटे-छोटे मन्दिर भी बने हुए हैं।

इस तीर्थस्थान में 108 शिवालय और 68 तीर्थ हैं। इस नागतीर्थ में हर 12 वर्षों के बाद कपिलाषष्ठी के समय काशी की गंगा का पदार्पण होता है। कहा जाता है कि औरंगजेब ने इस मन्दिर को तोड़ना चाहा, तब मन्दिर से हजारों भ्रमर या ततैया बाहर आकर औरंगजेब और उसके सैनिकों पर टूट पड़े और उन्हें भगा दिया। बाद में भक्तों ने मन्दिर के टूटे हिस्से को ठीक कर दिया।

(11) सेतुबन्ध – रामेश्वर

चार दिशाओं के चार धामों में रामेश्वर दक्षिण दिशा का धाम है। यह एक समुद्री द्वीप में स्थित है। यह रामेश्वर द्वीप लगभग 16-17 कि. मी. लम्बा और 11 कि. मी. चौड़ा है।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के कर-कमलों द्वारा इस ज्योतिर्लिङ्ग की स्थापना हुई थी। लङ्का पर चढ़ाई करने के लिये जाते हुए जब भगवान् रामचन्द्रजी यहाँ पहुँचे, तब उन्होंने समुद्रतट पर बालुका से शिवलिङ्ग बनाकर उसका पूजन किया। यह भी कहा जाता है कि समुद्र-तट पर भगवान् श्रीराम जल पी रहे थे इतने में एकाएक आकाशवाणी सुनायी दी-'मेरी पूजा किये बिना ही जल पीते हो?' इस वाणी को सुनकर भगवान् ने बालुका (रेत) की लिङ्गमूर्ति बनाकर शिवजी की पूजा की और रावण पर विजय प्राप्त करने का आशीर्वाद माँगा, जो भगवान् शङ्कर ने उन्हें सहर्ष प्रदान किया। उन्होंने लोकोपकारार्थ ज्योतिर्लिङ्गरूप से सदा के लिये वहाँ वास करने की सबकी प्रार्थना भी स्वीकार कर ली। भगवान् श्रीराम ने शङ्करजी की स्थापना और पूजा करके उनकी बड़ी महिमा गायी-

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं।।
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि।।
होइ अकाम जो छल तजि सेइहिं। भगति मोरि तेहि संकर देइहि।।
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही।।

(रामचरितमानस, लंकाका. 2/1-2)

एक दूसरा इतिहास इस लिङ्गस्थापन के सम्बन्ध में यह है कि जब रावण का वध करके भगवान् श्रीराम श्रीसीताजी को लेकर दल-बलसहित वापस आने लगे, तब समुद्र के इस पार गन्धमादन-पर्वत पर पहला पड़ाव डाला। उसी समय मुनीश्वरगण आपके स्तुत्यर्थ वहाँ आ पहुँचे। पीछे श्रीरामजी ने उनका

सत्कार करते हुए कहा–'मुझे पुलस्त्यकुल का विनाश करने के कारण ब्रह्महत्या का पातक लगा है; अतएव आपलोग कृपा कर बतलाइये कि इस पाप से मुक्ति पाने का क्या उपाय है?' मुनीश्वरों ने एक स्वर से भगवद्-गुण-गान करते हुए यह व्यवस्था दी कि 'आप शिवलिङ्ग की स्थापना कीजिये, इससे यह सब पाप छूट जायगा।'

भगवान् ने अञ्जनानन्दन महावीर हनुमान् को कैलास जाकर लिङ्ग लाने का आदेश दिया। वे क्षणमात्र में कैलास पर जा पहुँचे, पर वहाँ शिवजी के दर्शन नहीं हुए; अतएव वहाँ शिवजी के दर्शनार्थ तप करने लगे और पीछे उनके दर्शन देने पर लिङ्ग प्राप्त कर वापस लौटे। इधर जबतक वे आये, तबतक ज्येष्ठ-शुक्ला दशमी बुधवार को अत्यन्त शुभ मुहूर्त में शिवस्थापना हो भी चुकी थी। मुनियों ने हनुमान्जी के आने में विलम्ब समझकर कहीं पुण्यकाल निकल न जाय, इस आशङ्का से तुरंत लिङ्ग-स्थापन करने की प्रार्थना की और तदनुसार श्रीजानकीजी द्वारा बालुकानिर्मित लिङ्ग की ही स्थापना कर दी गयी। हनुमान्जी को यह सब देखकर बड़ा क्षोभ हुआ, वे अपने प्रभु के चरणों पर गिर पड़े। भक्तपरायण भगवान् ने उनकी पीठ पर हाथ फेरते-फेरते उन्हें समझाया–उनके आने के पूर्व ही लिङ्ग-स्थापना का कारण बतलाया और अन्त में उनके संतोषार्थ बोले, 'अच्छा, तुम इस स्थापित लिङ्ग को उखाड़ डालो। मैं इसके स्थान पर तुम्हारे द्वारा लाये गये लिङ्ग को स्थापित कर दूँगा।' हनुमान्जी प्रसन्नता से खिल उठे। स्थापित लिङ्ग उखाड़ने को झपटे; पर हाथ लगाने से मालूम हुआ कि काम आसान नहीं है। बालूका लिङ्ग वज्र बन गया था। अपना समूचा बल लगाया, पर व्यर्थ! अन्त में उसे अपनी लंबी पूँछ से लपेटा और फिर किलकारी मारकर जोर से खींचा। पृथ्वी डोल गयी, पर लिङ्ग टससेमस नहीं हुआ। उलटे हनुमान्जी ही धक्का खाकर एक कोस दूर मूर्च्छित होकर जा गिरे। उनके मुख आदि देह छिद्रों से रुधिर बहने लगा। श्रीरामचन्द्रजी आदि सभी व्याकुल हो गये। श्रीसीताजी भी उनके शरीर पर हाथ फेरती हुई रुदन करने लगीं। बहुत काल बाद उनकी मूर्छा दूर हुई। सम्मुखासीन भगवान् पर दृष्टि जाने पर साक्षात् परब्रह्म के रूप में उनके दर्शन हुए। आत्मग्लानिपूर्वक वे झट उनके चरणों पर पड़ स्तुति करने लगे। भगवान् ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा–'तुमने भूल की, जिससे इतना कष्ट मिला । मेरे स्थापित किये हुए इस लिङ्ग को संसार की समूची शक्ति भी नहीं उखाड़ सकती । महादेव के अपराध से तुमको यह फल मिला। अब कभी ऐसा मत करना।'

पीछे भगवान् ने हनुमान् द्वारा लाये हुए लिङ्ग को भी पास ही स्थापित करा दिया और उसका नाम रक्खा 'हनुमदीश्वर'। रामेश्वर और हनुमदीश्वर–इन दोनों शिवलिङ्गों की महिमा भगवान् ने अपने श्रीमुख से इस प्रकार वर्णन की है–

स्वयं हरेण दत्तं तु हनुमन्नामकं शिवम्।
सम्पश्यन् रामनाथं च कृतकृत्यो भवेन्नरः।।
योजनानां सहस्रेऽपि स्मृत्वा लिङ्गं हनूमतः।
रामनाथेश्वरं चापि स्मृत्वा सायुज्यमाप्नुयात्।।

तेनेष्टं सर्वयज्ञैश्च तपश्चाकारि कृत्स्नशः।
येन दृष्टौ महादेवौ हनूमद्राघवेश्वरौ।। (स्कं. पु. ब्र. खं. से. मा. अ. 45/61-63)

अर्थात् स्वयं भगवान् शिव के दिये हुए हनुमन्नामक लिङ्ग का तथा श्रीरामनाथेश्वर का दर्शन करके मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। हजार योजन की दूरी पर से भी श्रीहनुमदीश्वर तथा श्रीरामनाथेश्वर का स्मरण करके मनुष्य शिवसायुज्य को प्राप्त होता है। जिसने हनुमदीश्वर तथा राघवेश्वर महादेव का दर्शन कर लिया, उसने सारे यज्ञ और सारे तप कर लिये। श्रीरामेश्वरजी का दर्शन करने से पहले हनुमदीश्वर का दर्शन करना चाहिये।

रामेश्वर बाजार के पूर्व समुद्र किनारे लगभग 20 बीघे भूमि के विस्तार में श्रीरामेश्वर-मन्दिर है। यह मन्दिर 12 रहवीं शताब्दी से अबतक लगातार विकसित होता जा रहा है। मन्दिर के चारों ओर ऊँचा परकोटा है। इसमें पूर्व तथा पश्चिम दिशा में ऊँचे गोपुर हैं। पूर्वद्वार का गोपुर 10 मंजिला तथा पश्चिम का 7 मंजिला है। यह मन्दिर वास्तुशिल्प का विश्व में एक श्रेष्ठ नमूना है। मन्दिर के ऊँचे शिलास्तंभों पर सुन्दर-सुन्दर चित्र खुदवाये गये हैं। यह मन्दिर लगभग 1000 फुट लम्बा, 650 फुट चौड़ा तथा 125 फुट ऊँचा है। मन्दिर की कारीगरी को देखकर सभी लोग प्रभावित होते हैं। श्रीरामेश्वर-मन्दिर के सम्मुख एक स्वर्णमण्डित स्तंभ है। उसके पास ही मण्डप में विशाल श्वेतवर्ण की नन्दी की मूर्ति है जो 13 फुट ऊँची, 8 फुट लम्बी तथा 9 फुट चौड़ी है। यह नंदी अखंड पत्थर पर खोदा गया है जो मूर्तिकला का एक उत्कृष्ट नमूना है। नन्दी के वामभाग में हनुमान्जी के बालरूप की मूर्ति है। नन्दी से दक्षिण शिवतीर्थ नामक छोटा सरोवर है। नन्दी के उत्तर गंगा, यमुना, सूर्य, चन्द्र तथा ब्रह्महत्या विमोचन नाम के तीर्थ हैं। नन्दी से पश्चिम रामेश्वरजी के निज मन्दिर के आँगन में जाने का द्वार है। द्वार के वामभाग में गणेश तथा दक्षिण में सुब्रह्मण्यम् के छोटे मन्दिर हैं।

फाटक के भीतर विस्तृत आँगन है। आँगन के वामभाग में मुख्य मन्दिर के चबूतरे के नीचे कोटितीर्थ नामक कूप है। इस तीर्थ का जल रामेश्वर से लौटते समय यात्री साथ ले जाते हैं। इस तीर्थ का जल लेने के लिये निर्धारित शुल्क देना पड़ता है। रामेश्वरजी के मन्दिर के सम्मुख विस्तृत सभा-मण्डप है तथा उत्तर की ओर सटा हुआ श्रीविश्वनाथ (हनुमदीश्वर) मन्दिर है। मुख्य मन्दिर के सामने छड़ों का घेरा लगा है। तीन द्वारों के भीतर श्रीरामेश्वर का ज्योतिर्लिङ्ग प्रतिष्ठित है जो लगभग एक हाथ ऊँचा है। इनके ऊपर शेषजी के फणों का छत्र है। रामेश्वरजी पर कोई यात्री अपने हाथ से जल नहीं चढ़ा सकता। मूर्ति पर गंगोत्तरी या हरिद्वार का गंगाजल ही चढ़ता है और वह जल पुजारी को दे देने पर पुजारी यात्री के सम्मुख ही चढ़ा देता है। मूर्ति पर माला-पुष्प अर्पित करने का कोई शुल्क नहीं है। किन्तु जल चढ़ाने का शुल्क निर्धारित है। यहाँ गंगोत्तरी का जल चढ़ाने का बहुत ही माहात्म्य है। जिनके पास गंगाजल नहीं होता वे मन्दिर के अधिकारियों से शुल्क देकर खरीद सकते हैं।

इस विशाल मन्दिर में श्रीशिवजी की प्रधान लिङ्गमूर्ति के अतिरिक्त और भी अनेक सुन्दर

शिवमूर्तियाँ तथा अन्य (देव – देवी) मूर्तियाँ हैं। उदाहरण के लिये श्रीरामेश्वरजी का एक बहुत सुन्दर स्फटिक लिंग है जो चाँदी मढ़े अर्घे पर स्थापित है जिसके ऊपर शेषनाग के फन का छत्र है। इसके दर्शन प्रातःकाल 4½ बजे से 5 बजेतक होते हैं। मन्दिर खुलते ही प्रथम इसकी पूजा होती है। इसपर दुग्धधारा चढ़ाते समय इसका स्पष्ट दर्शन होता है। पूजा के पश्चात् मूर्ति पर चढ़ा दुग्धादि पंचामृत प्रसादरूप में यात्रियों को दिया जाता है। यहाँ श्रीशङ्कर – पार्वती की चल – मूर्तियाँ भी हैं, जिनकी वार्षिकोत्सव के अवसर पर सोने और चाँदी के वाहनों पर सवारी निकाली जाती है। चाँदी के त्रिपुण्ड्र तथा श्वेत उत्तरीय के कारण लिङ्ग की शोभा और भी बढ़ जाती है। मन्दिर के अंदर बाईस कुएँ हैं, जो तीर्थ कहलाते हैं। इनके जल से स्नान करने का माहात्म्य है। इन सब कुओं का जल मीठा है, किंतु मन्दिर के बाहर के सभी कुओं का जल खारा है। कहते हैं, भगवान् ने अपने अमोघ बाणों द्वारा इन कूपों का निर्माण किया था और उनमें भिन्न – भिन्न तीर्थों का जल मँगवाकर डाला था। इनमें से कुछ के नाम ये हैं –गङ्गा, यमुना, गया, शङ्ख, चक्र, कुमुद। इन कूपों के अतिरिक्त श्रीरामेश्वरधाम के अन्तर्गत करीब एक दर्जन तीर्थ और हैं। इनमें कुछ के नाम हैं –रामतीर्थ, अमृतवाटिका, हनुमान्कुण्ड, ब्रह्महत्यातीर्थ, विभीषणतीर्थ, माधवकुण्ड, सेतुमाधव, नन्दिकेश्वर और अष्टलक्ष्मीमण्डप।

प्रदोष, शिवरात्रि आदि पर्वों पर रामेश्वरजी की पालकी को हाथी पर हौदे में रखकर जुलूस निकाला जाता है। मंगल और शुक्र के दिन पार्वती माता की तीन फुट ऊँची स्वर्णमूर्ति की पालकी निकलती है। रामेश्वर – मन्दिर में सारा साल भाँति – भाँति के उत्सव चलते रहते हैं जैसे महाशिवरात्रि, वैशाख एवं ज्येष्ठपूर्णिमा, आषाढ़ कृष्णा अष्टमी से श्रावणशुक्लपूर्णिमा तक 'तिरुकल्याणोत्सव' (विवाहोत्सव), नवरात्रोत्सव, स्कंदजन्मोत्सव, आर्द्रादर्शनोत्सव, मकरसंक्रांति, वैकुण्ठ एकादशी तथा रामनवमी इत्यादि। हर रोज मन्दिर सवेरे 4 बजे से सायँ 10 बजेतक खुला रहता है। रात की आरती के बाद भगवान् के शयनगृह में सुवर्णझूले में शंकर – पार्वती की भोग मूर्तियाँ रखी जाती हैं।

श्रीरामेश्वर मन्दिर की पूरी व्यवस्था सरकार के अधीन है। बड़े ही व्यवस्थित ढंग से मन्दिर की देखभाल की जाती है। इस क्षेत्र में भीख माँगना एवं देना मना है। कोई आपसे दान की याचना नहीं करेगा। यहाँ के सभी कर्मचारी सरकारी नौकर हैं। यहाँ का मुक्त अनुशासन देखकर भक्तगणों को बड़ी प्रसन्नता होती है। भगवान् की हर प्रकार की पूजा की दर निश्चित कर दी गयी है। पहले कार्यालय से रसीद लेकर उसे पूजा के पात्र में रखकर पंडितजी के पास देनी पड़ती है। पूजा दूर से ही देखनी पड़ती है। पूजा के बाद प्रसाद दिया जाता है।

कहा जाता है कि चारों धाम की यात्रा तभी सफल होती है जब काशी के बिन्दुमाधव के पास गंगास्नान करके वहाँ का जल रामेश्वरजी को अर्पण किया जाय और रामेश्वर के धनुष्कोटि सेतुमाधव में स्नान करके वहाँ की थोड़ी रेत (बालू) लेकर प्रयाग (इलाहबाद) के वेणीमाधव के पास त्रिवेणीसंगम में डाला जाय। तत्पश्चात् त्रिवेणीसंगम का गंगाजल घर ले जाय। चारों धाम की यात्रा को

सफल बनाने के लिये ऐसा करना चाहिये।

श्रीरामेश्वर से पंद्रह – बीस मील दूर धनुष्कोटि नामक स्थान है, जहाँ भारत – महासागर और बंगाल की खाड़ी का सम्मेलन होता है। यहाँ श्राद्ध होता है। धनुष्कोटितक रेल गयी है। कहते हैं, यहीं पर श्रीरामचन्द्रजी ने समुद्र पर कुपित होकर शर – संधान किया था। धनुष्कोटि बड़ा बंदरगाह भी है, जहाँ से वर्तमान लङ्का (सीलोन) को जहाज आया – जाया करते हैं। रामेश्वर जाने के लिये बंबई, दिल्ली या कलकत्ते से पहले मद्रास (चेन्नई) जाना चाहिये और मद्रास से दक्षिण – रेलवे द्वारा त्रिचिनापल्ली होते हुए रामेश्वर जाना चाहिए। लक्ष्मण – तीर्थ में मुण्डन और श्राद्ध, समुद्र में स्नान तथा अर्घ्य – दान और गन्धमादन – पर्वत पर स्थित 'रामझरोखे' से समुद्र एवं सेतु के दर्शन का बड़ा माहात्म्य बतलाया जाता है। सेतु के बीच में बहुत – से तीर्थ हैं, जिनमें से मुख्य ये हैं – (1) चक्रतीर्थ, (2) वेतातवरद, (3) पापविनाशन, (4) सीतासर, (5) मङ्गलतीर्थ, (6) अमृत वापिका, (7) ब्रह्मकुण्ड, (8) अगस्त्यतीर्थ, (9) जयतीर्थ, (10) लक्ष्मीतीर्थ, (11) अग्नितीर्थ, (12) शुकतीर्थ, (13) शिवतीर्थ, (14) कोटितीर्थ, (15) साध्यामृततीर्थ और (16) मानसतीर्थ।

(12) घुश्मेश्वर

अब अन्तिम ज्योतिर्लिङ्ग घुश्मेश्वर, घुसृणेश्वर या घृष्णेश्वर का वर्णन किया जाता है। घृष्णेश्वर मन्दिर ईला नदी के किनारे स्थित है। ऐसा कहा जाता है कि पुराने जमाने में ईला नामक राजा राज्य करता था फलस्वरूप उसका नामकरण भी राजा के नाम पर किया गया। एलगंगा (इला नदी) महेशाद्रि पर्वत से निकलती है तथा एलोरा की 29 नं. की गुफा के सामने प्रपात का रूप धारण कर लेती है। यह बहुत वेग से घृष्णेश्वर मन्दिर के सामने से गुजरती है। मन्दिर में जाने के लिये उस पर घाट बनाया गया है। मध्य – रेलवे की मनमाड – पूर्णा लाइन पर मनमाड से 66 मील दूर दौलताबाद स्टेशन है। वहाँ से 12 मील पर वेरुल गाँव के पास यह स्थान है। आसानी से पहुँचने के लिये दौलताबाद न उतरकर औरंगाबाद (जो मराठवाड़ा का एक जिला मुख्यालय है) स्टेशन पर उतरना चाहिये, जो दौलताबाद से अगला स्टेशन है। दौलताबाद स्टेशन से गन्तव्य स्थानतक जाने का मार्ग पहाड़ी और बड़ा सुहावना है। मार्ग में दौलताबाद का किला है। यह दौलताबाद का किला घृष्णेश्वर से दक्षिण पाँच मील पर एक पहाड़ की चोटी पर है। यहाँ धारेश्वर शिवलिङ्ग और श्रीएकनाथजी के गुरु श्रीजनार्दन महाराज की समाधि है। यहाँ से आगे इलोरा की प्रसिद्ध गुफाएँ दर्शनीय हैं। इलोरा जाने के लिये दौलताबाद से पूर्ववर्ती इलोरा – रोड स्टेशन पर उतरना चाहिये। औरंगाबाद से यह स्थान 28 कि. मी. पश्चिम है। यहाँ के लिये औरंगाबाद से प्रचुर मात्रा में जाने के साधन मौजूद हैं। इलोरा में कैलास नामक गुहा सबसे श्रेष्ठ और सुन्दर है और पहाड़ को काटकर बनायी हुई है। गुहा कारीगरी की दृष्टि से बहुत सुन्दर है। यह न केवल हिंदुओं का ही ध्यान अपनी ओर खींचती है, बल्कि अन्य धर्मावलम्बी एवं अन्य देशवासी जन भी इसकी अद्‌भुत रचना को देखकर मुग्ध हो जाते हैं। एक श्यावेल नामक पाश्चात्य सज्जन तो दक्षिण – भारत के सभी

मन्दिरों को इस कैलास के नमूने पर बना हुआ बतलाते हैं। इलोरा इतना सुन्दर स्थान है कि बौद्ध और जैन तथा विधर्मी मुसलमानतक इसकी ओर आकर्षित हो गये और उन्होंने इस सुरम्य पहाड़ी पर अपने-अपने स्थान बनाये हैं। कुछ लोग इलोरा के कैलास-मन्दिर को ही घुश्मेश्वर का असली स्थान मानते हैं। श्रीघृष्णेश्वर-शिव और देवगिरि दुर्ग के बीच सहस्त्रलिङ्ग, पातालेश्वर, सूर्येश्वर मंदिर तथा सूर्यकुण्ड और शिवकुण्ड नामक सरोवर हैं। यह बहुत प्रचीन स्थान है। घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग की स्थापना का पौराणिक इतिहास इस प्रकार है-

दक्षिण देश में देवगिरि पर्वत के निकट सुधर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पतिपरायणा पत्नी का नाम सुदेहा था। दोनों में परस्पर सद्भाव था, इस कारण वे बड़े सुखी थे; परंतु ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, त्यों-त्यों उनके अंदर एक चिन्ता जाग्रत् होकर उस सुख में बाधा पहुँचाने लगी। वह चिन्ता यह थी कि उनके पीछे कोई संतान नहीं थी। ब्राह्मण-देवता ने ज्योतिष की गणना करके देखा कि सुदेहा की कोख से संतान उत्पन्न होने की कोई सम्भावना नहीं है। यह बात उसने अपनी पत्नी पर प्रकट भी कर दी, पर सुदेहा इस पर भी चुप नहीं बैठी। वह अपने पतिदेव से दूसरा विवाह करने का आग्रह करने लगी। सुधर्मा ने भरपूर समझाया कि इस झंझट में मत पड़ो, परंतु सुदेहा किसी प्रकार भी नहीं मानती थी। उसने कहा-'तुम मेरी बहिन घुश्मा के साथ विवाह कर लो। वह मेरी सहोदरा भगिनी है। उसके साथ मेरा अत्यन्त स्नेह का सम्बन्ध है, उसके साथ किसी प्रकार का मनोमालिन्य होने की आशङ्का बिल्कुल नहीं करनी चाहिये। हम दोनों परम प्रेम के साथ एक मन और दो तन होकर रहेंगी-आप निश्चिन्त रहें।'

अब और अधिक सुधर्मा अपनी पत्नी के आग्रह को न टाल सका। अन्ततोगत्वा वह इसके लिये राजी हो गया और एक निश्चित तिथि को घुश्मा के साथ ब्याह करके उसे घर ले आया। दोनों बहनें प्रेमपूर्वक रहने लगीं। घुश्मा अतीव सुलक्षणा गृहिणी थी। वह अपने पति की सब प्रकार से सेवा करती और अपनी ज्येष्ठा-भगिनी को मातृवत् मानती। साथ ही वह शिवजी की अनन्य भक्ता भी थी। प्रतिदिन नियमपूर्वक 101 पार्थिव-शिवलिङ्ग बनाकर उनका विधिवत् पूजन करती। भगवान् शङ्करजी के प्रसाद से अल्प काल में ही उसे गर्भ रहा और निश्चित समय में उसकी गोद में पुत्ररत्न के दर्शन हुए। सुधर्मा के साथ-साथ सुदेहा के आनन्द की भी सीमा न रहीं, परंतु पीछे चलकर उस पर न जाने कौन-सी राक्षसी वृत्ति ने अधिकार किया। उसके अंदर ईर्ष्या का अङ्कुर उत्पन्न हुआ। अब उसे न अपनी सहोदरा भगिनी की सूरत सुहाती और न उस शिशु के प्रति ही कुछ अनुराग रहा। उलटा उसे देख-देख वह मन-ही-मन कुढ़ती। ज्यों-ज्यों बालक की उम्र बढ़ने लगी त्यों-ही-त्यों उसका ईर्ष्याङ्कुर वृद्धिगत होता गया और जब समय पाकर वह बच्चा ब्याह करके घर में नववधू को लाया तबतक उसका ईर्ष्याङ्कुर भी फला-फूला वृक्ष बन गया। 'हाय! अब जो कुछ है, सब घुश्मा का है। मेरा इस घर में कुछ नहीं। यह पुत्र और पुत्रवधू हैं तो आखिर उसी के। मेरे ये कौन

हैं–उलटे मेरी सम्पत्ति को हड़पनेवाले हैं।' इन सब कुविचारों ने उसके हृदय को मथ डाला। वह उनका क्षय चाहने लगी; यही नहीं, बच्चे के प्राणान्त का उपाय भी सोचने लगी और अन्ततोगत्वा एक दिन रात्रि में जब वह अपनी पत्नी के साथ शयन कर रहा था, इस कुमतिग्रस्ता मौसी ने चुपचाप उसकी हत्या कर डाली और उसके शव को ले जाकर उसी सरोवर में छोड़ दिया, जिसमें घुश्मा जाकर पर्थिवशिवलिङ्ग को छोड़ती थी। प्रात:काल उसकी पत्नी ने उठकर देखा कि पति पलँग पर नहीं है और पलँग पर बिछाये हुए वस्त्र खून से लथपथ हैं। अभागी चीख मारकर रो पड़ी, फलत: बात–की–बात में घर में कुहराम मच गया। सुधर्मा की जो एक आँख थी, वह भी फूट गयी। पर घुश्मा कहाँ है? वह अपने पूजा–घर में शिवजी की सेवा में निरत है, उसे इस ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं। उसने सदा की भाँति नियमपूर्वक अपना नित्यकर्म समाप्त किया और फिर शिवलिङ्ग को तालाब में जाकर छोड़ा। भगवान् की लीला! एकाएक सरोवर के अंदर से उसका लाल जो मर चुका था, भला–चंगा निकल आया और माता से प्रार्थना करने लगा 'माता, मैं मरकर पुन: जीवित हो गया। ठहर, मैं भी चलता हूँ' बच्चा आकर माता के चरणों पर लोट गया; पर उसे ऐसा ही लगा मानो उसका लाल उसी प्रकार आकर उसके चरणों पर पड़ा है जिस प्रकार वह सदा बाहर से लौटकर पड़ता था। उसने न उसके मरने पर शोक मनाया था और न अब उसके जी उठने पर उसे हर्ष हुआ। अवश्य ही, सब कुछ शिवजी की लीला समझकर वह आनन्द में मग्न हो गयी। भगवान् भोलानाथ उसकी तन्मयता देख अब अधिक विलम्ब न कर सके। झट उसके सामने प्रकट हो गये और उससे वर माँगने को कहने लगे। वह उसकी सौत की काली करतूत भी नहीं सह सके और इसके लिये अपने त्रिशूल द्वारा उसका शिरश्छेद करने को उद्यत हो गये; परंतु धर्म परायणा घुश्मा उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी–

'प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपया मेरी बहन को क्षमादान दें। अवश्य ही उसने घोर पाप किया है, पर अब आपके दर्शन करके यह उससे मुक्त हो गयी। भला! आपके दर्शन करके भी कोई पापी रह सकता है? भगवान्! उसे क्षमा करो। उसने जो किया सो किया; पर अब कृपया ऐसा करें कि उसके अकल्याण में मैं किसी प्रकार निमित्त न बनूँ।' शिवजी उसकी वह उदारता देखकर उसपर और भी अधिक प्रसन्न हुए और उससे और कोई वर माँगने को कहने लगे। घुश्मा ने निवेदन किया–'महेश्वर! आपसे मैं यह वरदान माँगती हूँ कि आप सदा ही इस स्थान पर वास करें, जिससे सारे संसार का कल्याण हो।'

भगवान् शङ्कर 'एवमस्तु' कहकर ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में वहाँ वास करने लगे और घुश्मेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुए। उस तालाब का नाम भी तब से शिवालय हो गया। इन घुश्मेश्वर भगवान् की बड़ी महिमा गायी गयी है–

ईदृशं चैव लिङ्गं च दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ।
सुखं संवर्धते पुंसां शुक्लपक्षे यथा शशी ।। (शिवपु. ज्ञानसं. अ. 52 श्लो. 82)

अर्थात् घुश्मेश्वर महादेव के दर्शन से सब पाप दूर हो जाते हैं और सुख की वृद्धि उसी प्रकार

होती है जिस प्रकार शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की वृद्धि होती है। शिवालयतीर्थ के पास घृष्णेश्वर का भव्य मन्दिर राष्ट्रकूट घराने के दंतिदुर्ग (दंतिवर्धन) राजा की इच्छानुसार उनका चाचा (अथवा चचेरा भाई) कृष्णराज ने बनवाया था। उसी ने वेरूल (ऐलोरा) की कैलासगुफा (गुफा नं. 16) को ई० सं० 578 में बनवाया था। जिसके निर्माण में डेढ़ सौ साल लगे। परम शिवभक्त भोसले (वेरूल के पटेल) को घृष्णेश्वर की कृपा से किसी साँप की बाँवी से बड़ा खजाना हाथ लगा था। उस धन से उन्होंने मन्दिर का जीर्णोद्धार किया और शिखरशिंगणापुर में तालाब बनवाया। कालांतर में 17 वीं शताब्दी में इन्दौर की महारानी अहिल्याबाई होल्कर तथा उनकी सासें गौतमबाई और बायजाबाई ने इसका पुनः जीर्णोद्धार किया। 240 X 185 फुट आहाते में 84 X 61 फुट का मन्दिर आज भी मजबूत और सुन्दर दिखायी पड़ता है। मन्दिर का आधा भाग लाल पत्थर का और आधा प्लास्टर का दिखायी देता है। लाल पत्थरों पर दशावतार के दृश्य तथा अनेक देवमूर्तियाँ खुदी हुई हैं। जयराम भाटिया नाम के दाता ने सोने की चद्दर से मढ़ा हुआ ताम्रशिखर बनवाया है। इस मन्दिर के पत्थरों की जुड़ाई पत्थरों को तराश कर की गयी है। 24 पत्थरों के खम्भों पर एक सभा मण्डप बनाया गया है। खंभों पर भी नक्काशी की गयी है। गर्भगृह 17 X 17 फुट का है और लिंगमूर्ति पूर्वाभिमुख रखी हुई है। सभामण्डप में भव्य नंदीकेश्वर हैं। गर्भगृह में ज्योतिर्लिङ्ग के सामने संगमरमर की पार्वतीजी की मूर्ति है।

देवस्थान की रख-रखाव तथा पूजादि की व्यवस्था एक नियुक्त कमेटी द्वारा की जाती है। दिन में दो बार पूजा - आरती होती है। गर्भगृह में दर्शन के लिये जाते समय कपड़े उतार कर जाना पड़ता है। सोमवार, प्रदोष, शिवरात्रि तथा अन्य पर्वों पर यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है। भीड़ - भाड़ तो हमेशा लगी रहती है। गणेशजी के 21 पीठों में से एक पीठ लक्षविनायक भी यहीं पर है। सबसे पहले लक्षविनायक के ही दर्शन किये जाते हैं। महाशिवरात्रि के दिन 5 बजे सुबह शिवजी की सवारी निकलती है जो शिवालयकुण्डतक जाती है और शाम को 6 बजे वापस लौटती है।

घृष्णेश्वर अथवा एलोरा के नजदीक बड़ा शहर औरंगाबाद है जो देश के सभी कोनों से हवाई, रेल तथा सड़क मार्ग से जुड़ा हुआ है। उत्तर भारत से आनेवाले यात्री को मनमाड में गाड़ी बदलनी पड़ती है। औरंगाबाद से एलोरा 39 किलो मीटर है। वहाँ से बसें, टैक्सी और डीलक्स बसें आदि एलोरा के लिये प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।

(यह लेख गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण के शिवांक तथा तीर्थांक, शारदा साहित्य पुणे द्वारा प्रकाशित बारह ज्योतिर्लिंग, घृष्णेश्वर मन्दिर ट्रस्ट से प्रकाशित घृष्णेश्वर टेम्पलः एलोरा आदि पुस्तकों पर आधारित है।)